जैनधर्म की कहानियाँ

श्री पद्म (राम) चरित्र

भाग- 5

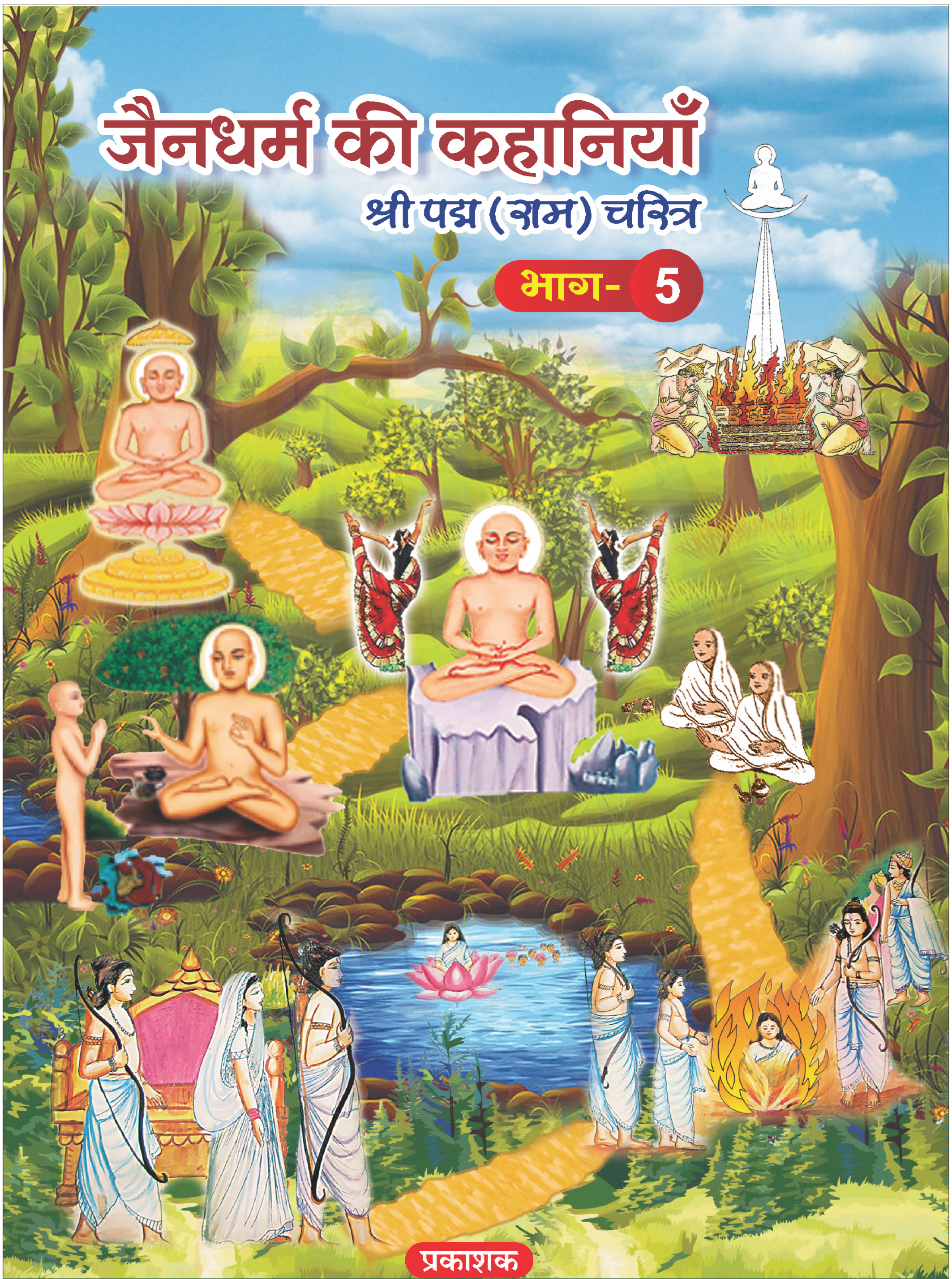

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन–सोनगढ़

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ५ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग -5)

(संक्षिप्त पद्म-पुराण अपरनाम जैन रामायण)

लेखक :

ब्र. हरिभाई, सोनगढ़

संकलन

श्री प्रेमचंद जैन, खैरागढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़ – 491 881

मो. 9424111488

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. 8619975965

अबतक प्रकाशित ३४००० प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ
महावीर निर्वाण महोत्सव, (नवम्बर, २०२४)

न्यौछावर : 25 रुपये मात्र

श्रीभूति की ही तरह हमें भी अपने बच्चों के विवाह आदि संबंध अपने आर्थिक व भौतिक स्तर के अनुकूल न देखकर नैतिक, धार्मिक व आध्यात्मिक स्तर को प्रमुख रखते हुए करना चाहिए।

जिससे दोनों परिवारों की धर्माराधना सहजता से चलती रह सके; क्योंकि वास्तव में बाह्य विभूति तो पुण्य–पाप के उदयानुसार मिलती–बिछुड़ती रहती है और पाप के कारणभूत पंचेन्द्रिय के विषयों में ही उलझाये रखती है।

– इसी पुस्तक से साभार

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता, लामरोड, देवलाली, नासिक-४२२ ४०१

३. **तीर्थधाम मंगलायतन,**
पो.- सासनी-२०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,** आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५, जिला-दतिया (म.प्र.)

५. **श्री रमेशचंद जैन, जयपुर** मो. ८६१९९ ७५९६५, ९४१४७१७८१६

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३४ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में बीसवें तीर्थंकर १००८ श्री मुनिसुव्रतनाथ के काल में हुए आठवें बलभद्र श्रीराम के पूर्वभवों सहित उनका चरित्र-चित्रण किया गया है, श्रीराम के साथ लक्ष्मण, रावण एवं सीता, हनुमान, बालि, सुग्रीव आदि का भी अतिसंक्षिप्त लेखन तो ब्र. हरिलाल जैन ने ही किया था, पश्चात् श्री प्रेमचंदजी खैरागढ़ ने प्रस्तुत संकलन किया है और इसका परिवर्धन एवं सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम सभी आभारी हैं।

आशा है चरित्र नायक के जीवन में आये उतार-चढ़ाव एवं उनके पूर्वभवों को पढ़कर पाठकगण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलेंगे।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन
अध्यक्ष

पं. अभय जैन शास्त्री
साहित्य प्रकाशन प्रमुख

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

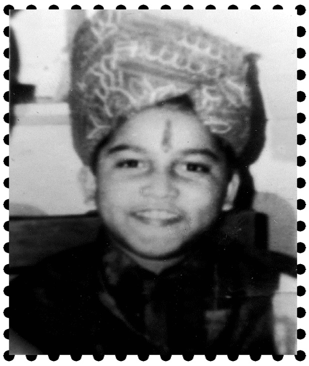

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य
श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य
श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य
झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता-अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य
श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्री ज्ञानचंद जैन, दिल्ली
श्रीमती रसिला बेन हंसमुख भाई शाह, अमेरिका

परम सहयोगी सदस्य
श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई

एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली
स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन, खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

श्रीमती पारसदेवी कोठारी, जयपुर	5101/-
श्रीमती पारुबेन किशोरभाई संघवी, मुम्बई	4501/-
तन्वी शाह ऋद्धि वोरा, मुम्बई	2501/-
श्रीमती हंसाबेन धरणीधर दामाणी, अहमदावाद	1501/-
जैन अध्यात्म स्टडी सर्किल ग्रुप, मुम्बई	1111/-
दमयन्तीबेन तरुण शाह बाल्केश्वर, मुम्बई	1111/-
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, ह.श्रुति-अभय, खैरागढ़	1001/-
श्रीमती निधि जैन, बैंगलौर	1001/-
श्रीमती अंजनबेन हितेनभाई पारेख, कुकमा	1001/-
श्री विमेशभाई शाह, मुम्बई	1001/-
श्रीमती स्वर्णा-प्रदीपकुमार जैन, ह.संयम-सम्यक् जैन, खैरागढ़	701/-
श्रीमती गुलाबबाई पन्नालाल छाजेड़, ह.उमेश-महेश, खैरागढ़	701/-
श्रीमती सौनम-विनयकुमार चौपड़ा जैन, खैरागढ़	501/-
चैनाली कामदार	501/-
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़	501/-
स्व. श्रीमती कंचनबाई ह.श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़	501/-
ढ़ेलाबाई चैरीटेवल ट्रस्ट ह.श्री मोतीलाल जैन, खैरागढ़	501/-
श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट, खैरागढ़	501/-
श्रीमती शांतिबाई भागचंद बुरड, दुर्ग	201/-
मा. मर्मज्ञ पूजा-साकेत जैन ह.श्रीमती वंदना-नरेन्द्र जैन,सरधना	201/-

जन्म-मरण जिसके माता-पिता हैं, आधि-व्याधि यह दोनों जिसके सहोदर भाई हैं और वृद्धावस्था जिसका परम मित्र है – ऐसे शरीर में रहकर तू अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र आशा में बह रहा है यह एक आश्चर्य है। **श्री आत्मानुशासन**

श्री राम–लक्ष्मण, सीता एवं रावण की भवावलि

नागदत्त – सुनन्दा

1. धनदत्त **(राम का जीव)**
✠ सौधर्म स्वर्ग का देव,
✠ पद्मरुचि सेठ **(बैल – सुग्रीव का जीव)**
✠ ईशान स्वर्ग का देव,
✠ नयनानंद विद्याधर,
✠ माहेन्द्र स्वर्ग का देव,
✠ श्रीचंद राजकुमार,
✠ ब्रह्म स्वर्ग का देव
3. फिर दशरथ पुत्र राम
इसी भव से मोक्ष।

1. वसुदत्त **(लक्ष्मण का जीव)**
✠ मित्र यज्ञबलि **(विभीषण का जीव)**
✠ हिरण आदि के पुरुषवेदी अनेकों भव
2. श्रीभूति पुरोहित **(सीता का पिता)**
✠ स्वर्ग एवं विद्याधर के अनेकों भव
3. फिर दशरथ पुत्र लक्ष्मण वासुदेव
4. नरक **(सीता के जीव ने संबोधन किया)**
5. राजकुमार **(सीता का पुत्र)**
✠ मनुष्य एवं देव के अनेकों भव
6. विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर पद के साथ मोक्ष

सागरदत्त – रत्नप्रभा

1. गुणवती (पुत्री) **(सीता का जीव)**
✠ हिरणी आदि के स्त्रीवेदी अनेकों भव
2. वेदवती **(श्रीभूति पुरोहित की पुत्री)**
✠ स्त्री एवं देवी के भव (चित्तोत्सवा)
3. सीता (श्री राम की पटरानी)
4. प्रतीन्द्र (सोलवें स्वर्ग में)
5. चक्रवर्ती (**रावण, लक्ष्मण का पिता**)
✠ अहमिन्द्र
6. गणधर पद के साथ मोक्ष

धनाढ्य–सेठ का पुत्र

1. श्रीकान्त **(रावण का जीव)**
✠ हिरण आदि के पुरुषवेदी अनेकों भव
2. शम्भू
✠ नरक–तिर्यंच के पुरुषवेदी अनेकों भव
✠ राजा प्रभासकुन्द
3. फिर केकसी पुत्र रावण प्रतिवासुदेव
4. नरक (सीता के जीव ने संबोधन किया)
5. राजकुमार (सीता का पुत्र)
✠ मनुष्य एवं देव के अनेकों भव
6. भरतक्षेत्र में तीर्थंकर पद के साथ मोक्ष

नोट :– भवों को क्रमांक से मिलाकर देखें।

गुणवती (सीता का जीव)

धनदत्त (राम का जीव) से शादी तय हुई। श्रीकान्त (रावण का जीव) चाहता था।

वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव)

श्रीकान्त (रावण के जीव) को मारता है और धनदत्त (राम का जीव) का भाई है।

परिणाम स्वरूप धनदत्त और गुणवती की शादी नहीं हो पाती।

शादी न होने के कारण धनदत्त नगर छोड़कर वन की ओर चला जाता है और मुनिराजों के समागम में आकर अणुव्रत धारण कर लेता है। तथा पर्याय पूरी कर सौधर्म स्वर्ग में देव हो जाता है।

इधर आगामी अनेक भवों में श्रीकान्त और वसुदत्त हिरण, हाथी आदि अनेक तिर्यंच पर्यायों को धारण कर अनंत दुखों को भोगते हैं। गुणवती भी वहीं तिर्यंच पर्याय में स्त्रीवेदी होती है। और वे दोनों उसे पाने के लिए एक दूसरे को मारते हैं और स्वयं मरते हैं। इसप्रकार अनेक तिर्यंच पर्यायों को धारण करते हुए गुणवती, वसुदत्त और श्रीकान्त क्रमशः वेदवती, श्रीभूति और शम्भू नामक मनुष्य पर्याय को प्राप्त होते हैं।

इनके पूर्व एवं आगामी भव कुछ इसप्रकार हैं –

राम – धनदत्त, सौधर्म स्वर्ग का देव, पद्मरुचि सेठ, ईशान स्वर्ग का देव, नयनानंद विद्याधर, माहेन्द्र स्वर्ग का देव, श्रीचंद राजकुमार, ब्रह्म स्वर्ग का देव फिर दशरथ पुत्र राम और इसी भव से मोक्ष।

सीता – गुणवती, फिर अनेकों बार तिर्यंच में स्त्रीवेदी के भव, वेदवती, स्वर्ग की देवी, सीता, प्रतीन्द्र आदि... एवं भविष्य में मोक्ष।

लक्ष्मण – वसुदत्त, फिर अनेकों बार तिर्यंच में पुरुषवेदी के भव, श्रीभूति, फिर अनेकों बार तिर्यंच एवं नरक के भव, लक्ष्मण, नारकी आदि... एवं भविष्य में मोक्ष।

रावण – श्रीकान्त, फिर अनेकों बार तिर्यंच में पुरुषवेदी के भव, शम्भू, फिर अनेकों बार तिर्यंच एवं नरक के भव, रावण, नारकी आदि... एवं भविष्य में मोक्ष।

संक्षिप्त पद्मपुराण अपर नाम जैन रामायण

(श्रीराम आदि के पूर्वभव)

विभीषण के द्वारा श्रीराम आदि के पूर्वभव पूछने पर सकलभूषण केवली भगवान की वाणी में आया कि इस संसार में राम–लक्ष्मण के साथ रावण का अनेक जन्म से उत्कट बैर चला आ रहा था।

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक 'क्षेत्र' नामक नगर में एक नयदत्त नामक मध्यमवर्गीय वणिक रहता था। उसका धनदत्त (राम का जीव) नाम का एक होनहार पुत्र था। दूसरा वसुदत्त (लक्ष्मण का जीव) नाम का पुत्र था। इस वसुदत्त का एक यज्ञबलि (विभीषण का जीव) नाम का मित्र था।

इसी नगर में सागरदत्त नामक दूसरे वणिक के घर गुणवती (सीता का जीव) नामक पुत्री थी।

इसी नगर में एक अन्य अत्यन्त धनाढ्य श्रीकांत (रावण का जीव) नामक वणिक पुत्र भी रहता था।

जब गुणवती युवावस्था को प्राप्त हुई तो उसके पिता ने उसका विवाह धनदत्त से करना तय कर दिया। परन्तु गुणवती की क्षुद्र हृदयवाली माता रत्नप्रभा ने धन की कमी के कारण धनदत्त के प्रति अवज्ञा का भाव रखकर उसका विवाह धनाढ्य अविवेकी श्रीकांत से करना चाहा।

इस कारण धनदत्त के भाई वसुदत्त ने श्रीकांत को मारने की योजना बनाई और परस्पर लड़ते हुए दोनों मरण को प्राप्त हुए।

अरे रे ! देखो धन के लोभ में एक माँ अपनी पुत्री को एक अविवेकी धनाढ्य श्रीकान्त से तो विवाहना चाहती है, पर गुणवान धनदत्त के साथ तय हुए विवाह को तोड़ना चाहती है; क्योंकि उसके पास उतना अधिक धन नहीं था। पर उसका यह अविवेक उन्हें जनम–जनम का बैरी बना देता है।

दुर्जनों की कुचाल में फसकर धनदत्त का गुणवती से विवाह नहीं हो सका, परिणाम स्वरूप वह भाई वसुदत्त के मरण से दुःखी तो पहले ही था, गुणवती के न मिलने से और अधिक दुखी हुआ और देश छोड़कर अन्य अनेक देशों में भ्रमण करने लगा।

गुणवती का भी धनदत्त के साथ विवाह न होने के कारण, वह बहुत दुखी रहने लगी। अतः अब वह अपने घर–गृहस्थी के रसोई आदि कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी सदा खिन्न रहती और अपने मिथ्यादृष्टि स्वभाव के कारण निर्ग्रंथ मुनि को देखकर उनसे द्वेष करती, ईर्ष्या करती, गालियाँ देती, उनका तिरस्कार करती।

कर्म बंध के अनुरूप जिसकी आत्मा सदा मिथ्यादर्शन और कषायों में आसक्त रहती है – ऐसी वह, नाम से गुणवती पर परिणाम से अति–दुष्टा अवगुणों की भण्डार जिनशासन की अश्रद्धानी आयु समाप्त होने पर आर्तध्यान से मरकर उसी विंध्याचल की महा अटवी में **हिरणी** हुई, जहाँ श्रीकांत व वसुदत्त के जीव भी मरकर हिरण हुए थे।

पूर्व–संस्कार वश उसी मृगी के लिए दोनों फिर लड़े और मरण को प्राप्त हुए। इसीप्रकार आगामी अनेक भवों में शूकर–हाथी, बैल, बानर, चीता, भेड़िया, काला मृग आदि अनेक पर्यायों को प्राप्त होकर परस्पर लड़ते मरते रहे। पाप कार्य में तत्पर रहने वाले वे दोनों जल में, स्थल में, जहाँ भी उत्पन्न होते थे वहीं बैर का अनुसरण करने में तत्पर रहते थे और उसी प्रकार परस्पर एक दूसरे को मारा करते थे।

अरे रे ! **देखो तो सही, अपने ही विराधक परिणामों का फल** ! एक स्त्री की प्राप्ति हेतु जो मनुष्य पर्याय स्वर्ग–मुक्ति का कारण बन सकती थी, उसी पर्याय में परस्पर एक–दूसरे के बैरी हो, एक–दूसरे के जान के प्यासे होकर एक–दूसरे का घात किया और अनेक भवों तक तिर्यंच पर्यायें धारण कर भयानक कष्ट सहन किये। **अत: हे जीव ! सावधान हो और किसी से बैर–विरोध ना कर। अपने को और परजीवों को आत्मा समझ, आत्मा मान।**

राम के पूर्वभव[1] **–** जो गुणवती के न मिलने से और भाई वसुदत्त के वियोग से उत्पन्न दुख से दुखी हो देशान्तर चला गया था – ऐसा वह धनदत्त एक दिन सूर्यास्त के समय पर मुनियों के संघ में पहुँचा। वह प्यासा था इसलिए उसने मुनियों से कहा कि मैं तृषा से बहुत दुखी हो रहा हूँ अतः मुझे पानी दीजिए। आप लोग पुण्य करना अच्छा समझते हैं। उनमें से एक मुनि ने सान्त्वना देते हुए मधुर शब्द कहे कि **रात्रि में अमृत पीना भी उचित नहीं है फिर पानी की तो बात ही क्या है?**

हे वत्स ! जो पापरूप होने से अत्यन्त कष्ट का कारण है, जो नहीं दिखनेवाले सूक्ष्म जन्तुओं से सहित है। अत: हे भद्र ! तुझे दुःखी होने पर भी असमय में जलपान नहीं करना चाहिए। जब सूर्य का अभाव हो जाता है – ऐसे समय में तू जलपान मत कर। तू दुखरूपी भयंकर लहरों से युक्त संसार–सागर में मत पड़।

यह सुनकर उसका चित्त दया से आलिङ्गित हो उठा और मुनियों की अल्प संगति के फलस्वरूप वह अणुव्रत का धारी हो गया। वह

---

1. धनदत्त, सौधर्म स्वर्ग में देव, पद्मरुचि सेठ, ईशान स्वर्ग में देव, नयनानंद विद्याधर, माहेन्द्र स्वर्ग में देव, श्रीचंद राजकुमार, ब्रह्मस्वर्ग में इन्द्र, श्रीराम, इसी भव से मोक्ष।

अल्पशक्ति का धारक था, इसलिए महाव्रती नहीं बन सका। तदनन्तर आयु का अन्त आने पर मरण को प्राप्त हो वह सौधर्म स्वर्ग में उत्तम देव हुआ। पश्चात् वह धनदत्त का जीव सौधर्म स्वर्ग से चयकर महापुर नगर में एक श्रेष्ठी के घर पद्मरुचि नामक पुत्र हुआ।

एक दिन पद्मरुचि (राम) घोड़े पर सवार हो, जब अपने गोकुल की ओर आ रहा था, तब मार्ग में उसने पृथ्वी पर पड़ा एक बूढ़ा बैल देखा। सुगन्धित वस्त्र तथा माला आदि को धारण करनेवाला दयालु पद्मरुचि घोड़े से उतर कर अतिवात्सल्य से उस बैल के पास आकर उसने पञ्चनमस्कार मन्त्र सुनाया, तभी सुनते हुए विशुद्धि को प्राप्त उस बैल के प्राण निकल गये। मन्त्र के प्रभाव से विशुद्धि को प्राप्त वह बैल, उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की श्रीदत्ता नाम की रानी के वृषभध्वज (सुग्रीव का जीव) नाम का पुत्र हुआ।

एक दिन वह राजकुमार (बैल का जीव) वृषभध्वज (सुग्रीव का जीव) अपने हाथी पर सवार हो भ्रमण करता हुआ उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ उसका बैल की दशा में मरण हुआ था। वहाँ पहुँचते ही उसे जातिस्मरण हो आया और अपने पूर्वजन्म में (बैल की पर्याय में बोझा ढोना, भूख-प्यास, शीत-आतप आदि के) जो उसने दारुण दुख भोगे थे, वे सब उसे एक-एक कर स्मरण में आने लगे और जो उसे पञ्चनमस्कार मंत्र श्रवण करने का योग बना था, वह भी उसकी स्मृति पटल पर झूलने लगा।

तदनन्तर वह वृषभध्वज राजकुमार हाथी से उतर कर दुखित चित्त होता हुआ इच्छानुसार बहुत देर तक बैल के मरने की उस भूमि को देखता रहा। समाधिमरण रूपी रत्न के दाता तथा उत्तम चेष्टाओं से सहित उस बुद्धिमान पद्मरुचि को जब वह नहीं देख सका, तब उसने उसके देखने के लिए योग्य उपाय का विचार किया। उसने उसी

स्थान पर कैलाश के शिखर के समान एक उन्नत भव्य जिनमन्दिर बनवाया, उसमें चित्रपट आदि पर महापुरुषों के चरित्र तथा पुराण लिखवाये। उसी मन्दिर के द्वार पर उसने अपने पूर्वभव के चित्र से चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करने के लिए चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये।

एक दिन पद्मरुचि (राम) इस नवीन जिनमन्दिर की वंदना करने आया। जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-वंदन कर वह वहाँ चित्रपटों पर उत्कीर्ण चित्रों को देखने लगा, जब वह णमोकार मंत्र सुनाते उस बैल के चित्र

को आश्चर्य मिश्रित दृष्टि से देखता है, तभी वृषभध्वज के सेवक यह संदेश कुमार के पास भेज देते हैं। समाचार सुनते ही कुमार शीघ्र ही हाथी पर सवार होकर वहाँ आ जाता है और पद्मरुचि को आदर, बहुमान, कृतज्ञता पूर्वक नमस्कार कर चरणों में पड़ जाता है एवं बताता है कि आप जिस मरण सन्मुख बैल को देख रहे हैं; वह और कोई नहीं, मैं ही हूँ।

जिसप्रकार उत्तम शिष्य, गुरु का बहुमान कर संतुष्ट होता है, उसीप्रकार वह कुमार वृषभध्वज भी पद्मरुचि का सम्मान कर संतुष्ट हुआ। उसका गुणानुवाद करता हुआ कहने लगा – "हे पुरुषोत्तम आज्ञा देकर मुझे अनुगृहीत करें। तुम यह समस्त राज्य ले लो, मैं सदा तुम्हारा दास बनकर रहूँगा। मुझे इच्छानुसार कार्य में नियुक्त करो।"

तदनन्तर दोनों में परस्पर घनिष्ट मित्रता हो गई, दोनों सम्मिलित रूप से राज्य करते एवं सम्यक्त्व सहित धर्म आराधना पूर्वक श्रावक के व्रत पालन करते हुए जीवनभर अनेक जनोपयोगी एवं धार्मिक कार्यों को करते रहे। उन्होंने अनेक जिनमन्दिर बनवाये, उनमें परम सोम्यमुद्राधारी जिनबिम्ब प्रतिष्ठा पूर्वक विराजमान किये – इत्यादि प्रकार से प्रभावना करते हुए वे दोनों ही अपनी आयु के अन्त समय में समाधिपूर्वक देह त्याग कर ईशान स्वर्ग में वैमानिक देव हुए।

तदनन्तर पद्मरुचि (राम) का जीव स्वर्ग से चय कर नयनानंद नाम का विद्याधर हुआ और गृहस्थ जीवन का परित्याग कर मुनि दशा अंगीकार कर कठोर तपश्चरण एवं ज्ञान–ध्यान में लीन रहता हुआ अंत में समाधिपूर्वक आयु पूर्ण कर माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से चय कर क्षेमपुरी के राजा विपुलवाहन की रानी पद्मावती के श्रीचंद्र (राम) नाम का राजकुमार हुआ।

एक दिन उनके नगर क्षेमपुरी के उद्यान में समिति–गुप्ति के धारक

समाधिगुप्त मुनिराज का ससंघ पदार्पण हुआ। तब राजा श्रीचंद (राम) अपने परिवार सहित मुनिराज की वंदना करने को गये।

वक्ताओं में श्रेष्ठ मुनिराज ने अनुयोग द्वार से वर्णन करते हुए कहा कि –1 प्रथमानुयोग 2 करणानुयोग 3 चरणानुयोग और 4 द्रव्यानुयोग के भेद से अनुयोग के चार भेद हैं। तदनन्तर उन्होंने अन्य मत–मतान्तरों की आलोचना करनेवाली **आक्षेपणी कथा** की। फिर स्वकीय तत्त्व का निरूपण करने में निपुण **निक्षेपणी कथा** की। तदनन्तर संसार से भय उत्पन्न करनेवाली **संवेजनी कथा** की और उसके बाद भोगों से वैराग्य उत्पन्न करनेवाली पुण्यवर्धक **निर्वेदनी कथा** की।

उन्होंने कहा कि कर्मयोग से संसार में भ्रमण करनेवाले इस प्राणी को मोक्षमार्ग की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। यह संसार विनाशीक होने के कारण संध्या की लालिमा, पानी का बुलबले, फेन, तरङ्ग, बिजली और इन्द्रधनुष के समान हैं; इनमें कुछ भी सार नहीं है।

यह प्राणी नरक अथवा तिर्यञ्चगति में एकान्त रूप से दुख ही प्राप्त करता है और मनुष्य तथा देवों के सुख प्राप्त करके भी यह तृप्त नहीं होता। **जो इन्द्रों की भोग–सम्पदाओं से तृप्त नहीं हुआ वह मनुष्यों के क्षुद्र भोगों से कैसे तृप्त हो सकता है?**

जिसप्रकार निर्धन मनुष्य किसी तरह दुर्लभ खजाना पाकर यदि प्रमाद करता है तो उसका वह खजाना व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार यह प्राणी किसी तरह दुर्लभ मनुष्य पर्याय पाकर विषय स्वाद के लोभ में पड़कर यदि प्रमाद करता है तो उसकी मनुष्यपर्याय व्यर्थ चली जाती है। **सूखे ईन्धन से अग्नि की तृप्ति हुई है क्या ? नदियों के जल से समुद्र की तृप्ति हुई है क्या ? इसीप्रकार विषयों के आस्वाद–सम्बन्धी सुख से किसी की तृप्ति नहीं हो सकती।** जल में डूबते हुए मनुष्य के समान, विषयरूपी मदिरा से मोहित हुआ जीव भी मोहान्ध चित्त होकर अनंत दुखों को प्राप्त हो जाता है।

सूर्य तो दिन में ही तपता है पर कामभाव रात–दिन तपता रहता है। सूर्य पर तो आवरण भी आ जाये, पर कामभाव का आवरण नहीं आता। संसार में अरहट घट के समान निरन्तर कर्मों से उत्पन्न होनेवाला जो जन्म, जरा और मृत्यु सम्बन्धी दुख है वह स्मरण आते ही जीव जीवित होते हुए भी मरणजन्य दुख के समान दुखी हो जाता है– ऐसा जानकर कुलीन मनुष्य विरक्त हो जिनप्रतिपादित मार्ग को प्राप्त होते हैं।

जो उत्साह रूपी कवच से आच्छादित हैं, निश्चय रूपी घोड़े पर सवार हैं और ध्यानरूपी खड्ग को धारण करनेवाले हैं ऐसे धीर–वीर मनुष्य ही सुगति को प्रस्थान करते हैं।

जिन्हें सुख–दुखादि समान हैं, जो स्वजन और परजनों में समान हैं तथा राग–द्वेष आदि से रहित हैं ऐसे मुनि ही पुरुषोत्तम हैं। अतः हे मानव ! शरीर जुदा है और मैं जुदा हूँ ऐसा विचार कर निश्चय करो कि मैं शरीर से भिन्न चैतन हूँ। अतः शरीर में स्नेह छोड़कर धर्म धारण करो।

इसप्रकार श्री मुनिराज का उपदेश सुनकर श्रीचन्द्र (राम) का मन

विषय आस्वाद सम्बन्धी सुख से पराङ्मुख हो, रत्नत्रय को प्राप्त हो गया। फलस्वरूप उस उदार चेतना ने धृतिकान्ता नामक पुत्र के लिए राज्य देकर समाधिगुप्त मुनिराज के समीप मुनिदीक्षा धारणा कर ली।

अब वे श्रीचन्द्र मुनि समीचीन भावना एवं समितियों–गुप्तियों से सहित थे, त्रियोग सम्बन्धी शुद्धि को धारण करते थे, तथा राग–द्वेष से विमुख थे। रत्नत्रय रूपी उत्तम अलंकारों से युक्त थे, क्षमा आदि गुणों से सहित थे, पञ्च महाव्रतों के धारक थे, प्राणियों की रक्षा करनेवाले थे, सात भयों से निर्मुक्त थे तथा उत्तम धैर्य से सहित थे। ईर्या समिति पूर्वक उत्तम विहार करने में तत्पर थे, परीषहों के समूह को सहन करने वाले थे, तथा बेला, तेला और पक्षोपवासादि करने के बाद पारणा करते थे।

ध्यान और स्वाध्याय में निरन्तर लीन रहते थे; ममता रहित थे, इन्द्रियाभिलाषा को शीघ्रता से जीतने वाले थे, अहिंसक आचरण करने में कुशल थे, मुनिसंघ पर अनुग्रह करने में तत्पर थे और केश की अनीमात्र परिग्रह की भी इच्छा से रहित थे। वे आसक्ति रहित थे, दिगम्बर थे, गाँव में एक रात्रि और नगर में पाँच रात्रि तक ही ठहरते थे। पर्वत की गुफाओं, नदियों के तट अथवा बाग–बगीचों के प्रासुक स्थानों में ही उनका उत्तम निवास होता था, उन्होंने शरीर से ममता छोड़ दी थी, वे स्थिर थे, मौनी थे, विद्वान थे और सम्यक् तप में तत्पर थे। इत्यादि गुणों से सहित श्रीचन्द्रमुनि कामरूपी ज्वर को जर्जर–जीर्ण–शीर्ण कर समाधिमरण प्राप्त कर ब्रह्मस्वर्ग के इन्द्र हुए। तत्पश्चात् वह श्री चंद्रमुनि ने ब्रह्मलोक में 10 सागर की इन्द्र पर्याय पूर्ण कर तद्भव मोक्षगामी राम के रूप में अवतार लिया।

इसप्रकार उत्तम मनुष्य पर्याय से उत्तम देव पर्याय और उत्तम देव पर्याय से उत्तम मनुष्य पर्याय को प्राप्त करनेवाले धनदत्त का वर्णन किया।

अब कर्मों की विचित्रिता के कारण विविधरूपता को धारण

करने वाले, वसुदत्तादि (लक्ष्मण, रावण व सीता) के भ्रमण का संक्षेप में वर्णन करता हूँ।

सीता व लक्ष्मण के पूर्वभव[1] – गुणवती (सीता का जीव) समीचीन धर्म से रहित हो अपने पूर्व कृत कर्मों के कारण तिर्यंच गति के अनेक भव धारण करती हुई, दुख भोगती हुई एक बार गंगा नदी के तट पर हथिनी हुई। और वह वहाँ बहुत भारी कीचड़ में फस गई। तब वह नेत्र बंद कर मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हुई तब उसे तरंगवेग नामक विद्याधर ने पंच नमस्कार मंत्र सुनाया उससे उसकी कषाय मंद हो गई और वह वहाँ ही क्षेत्र संन्यास धारण कर मरण को प्राप्त हुई।

पश्चात् जो अनेक भवों में दुख पाते हुए (लक्ष्मण का जीव) मृणालकुण्ड नामक नगर में श्रीभूति नामक पुरोहित हुआ था, उसके घर वेदवती (सीता का जीव) नामक पुत्री हुई।

एक दिन उसने अपने ही घर आहार पर आये मुनिराज को देखकर उनकी हँसी उड़ाई, तब पिता के समझाये जाने पर वह प्रतिबोध को प्राप्त हुई और श्राविका के व्रत धारण किए। यद्यपि वेदवती ने पिता के समझाने पर मुनियों की निंदा करना बंद कर दिया था, तथापि एक बार माण्डलिक नामक नगर के उद्यान में मुनिराज सुदर्शन का उपदेश सुनकर जब सभी श्रावक गण अपने–अपने स्थान को जाने लगे, तब सुदर्शना नामक आर्यिका को उन मुनिराज से धर्मचर्चा करते हुए देखकर वेदवती

---

1. **सीता के पूर्वभव** – गुणवती, हिरणी, शूकरी, हथिनी, भैंस, गाय, बंदरिया, घोड़ी, भेड़, बकरी, वेदवती, अनेक भव, सीता, प्रतीन्द्र, भविष्य में कुछ भव धारण कर अंत में गणधर होकर सिद्ध।

1. **लक्ष्मण के पूर्वभव** – वसुदत्त, हिरण, शूकर, हाथी, भैंसा, बैल, बंदर, घोड़ा, भेड़िया, बकरा, श्रीभूति पुरोहित, अनेक भव, लक्ष्मण, नारकी, भविष्य में कुछ भव धारण कर अंत में विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर होकर सिद्ध।

ने नगर में जाकर उनकी निंदा करते हुए प्रलाप किया, कि मैंने मुनि को अकेले स्त्री के समीप बैठे देखा है, तब कुछ ने उसकी बात मानी और कुछ समझदारों ने नहीं मानी; परन्तु नगर में मुनिराज का अपवाद हो गया। अत: मुनिराज ने प्रतिज्ञा की, कि जब मिथ्या अपवाद दूर होगा तभी आहार चर्या को निकलूँगा।

तब वेदवती ने नगर के समस्त लोगों को जाकर कहा कि मैंने मुनिराज का झूठा अपवाद किया था और मुनिराज के पास जाकर भी क्षमा याचना की, कि हे प्रभो ! मुझ पापिन ने मिथ्या वचन कहे थे, अत: मैं घोर अपराधी हूँ, आप मुझे चाहें तो दण्ड दें या क्षमा करें। तब मुनिराज ने कोमल संबोधन के साथ कहा – **इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, हमारे ही अयशस्कीर्ति कर्म का उदय था।**

कर्मों के उदयानुसार फल तो आता ही है, उससे जुड़ना या छूटना वह जीव की स्वयं की योग्यता व पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। विचार कीजिए, सीता के जीव ने इस भव में मुनिराज पर मिथ्या दोष लगाया था, जो हजारों वर्ष बाद सीता के भव में मुनिराज की निंदा के फलस्वरूप सीताजी पर मिथ्या आरोप लगा और मुनिराज से क्षमायाचना के फलस्वरूप अपवाद दूर हुआ। **अत: जो जिनमार्गी हैं वे कभी भी परनिंदा नहीं करते। ज्ञानी तो किसी में सच्चा दोष हो तो भी नहीं कहते, कोई कहता हो तो उसको रोकते हैं, अन्य का दोष सर्वथा ढांकते हैं।**

जो कोई परनिन्दा करते हैं, वे अनन्तकाल संसार वन में दुख भोगते हैं। सम्यग्दृष्टि का बड़ा गुण यह है कि वह अन्य के अवगुण सर्वथा ढाँके। जो अन्य का सच्चा दोष भी उससे न कहकर अन्य से कहते हैं, वे अपराधी हैं। अज्ञान व मत्सरभाव से अन्य का मिथ्यादोष प्रगट करे, उसके समान अन्य कोई पापी नहीं है। **अत: अपने दोष**

निकालने हेतु, अपने दोष स्वयं ही अपने गुरु के पास जाकर कहना चाहिए, परन्तु अन्य के दोष नहीं कहना चाहिए।

रावण के पूर्वभव[1] – वेदवती (सीता) की सुन्दरता के प्रति आकर्षित होकर अनेक देशों के राजकुमार उसे चाहने लगे। वे उसे पाने के लिए अपने प्रस्ताव श्रीभूति के पास भेजने लगे। इन्हीं में एक शम्भू (रावण का जीव) नामक राजकुमार अपने पूर्व भव के संस्कार वश वेदवती को पाने के लिए विशेष उत्कण्ठित था।

वेदवती का पिता श्रीभूति पुरोहित (लक्ष्मण का जीव) महाजिनधर्मी था और उसकी पुत्री वेदवती महासुन्दर रूपवती थी। राजपुत्र शम्भूकुमार वेदवती को चाहता था, परन्तु वह विधर्मी था और वेदवती का पिता जिनधर्मी के सिवाय अन्य किसी को अपनी पुत्री नहीं देना चाहता था। इसलिये शम्भूकुमार ने वेदवती के पिता को मार डाला और वेदवती के साथ बलात्कार किया। उस कुमारी ने क्रोधित होकर शम्भूकुमार से कहा कि अरे नीच, पापी ! तूने मेरे साथ बलात्कार करके मेरा शील भंग किया है। इसलिये आगामी भव में मैं तेरे नाश का कारण होऊँगी। ऐसा कहकर उसने हरिकान्ता आर्यिकाजी से दीक्षा ले ली और तप करके स्वर्ग में गई। वहाँ से चयकर सीता होकर रावण (शम्भू का जीव) के नाश का कारण बनी।

श्रीभूति की ही तरह हमें भी अपने बच्चों के संबंध अपने आर्थिक व भौतिक स्तर के अनुकूल न देखकर नैतिक, धार्मिक व आध्यात्मिक स्तर को प्रमुख रखते हुए करना चाहिए, जिससे दोनों परिवारों की धर्माराधना सहजता से चलती रह सके; क्योंकि

---

1. रावण के पूर्वभव : श्रीकान्त, हिरण, शूकर, हाथी, भैंसा, बैल, बंदर, घोड़ा, भेड़िया, बकरा, शम्भू, रावण, नरक आदि अनेक भवों बाद भरतक्षेत्र के तीर्थंकर होकर मोक्ष।

वास्तव में बाह्य विभूति तो पुण्य–पाप के उदयानुसार मिलती–बिछुड़ती रहती है और पाप के कारणभूत पंचेन्द्रिय के विषयों में ही उलझाये रखती है।

इसके बाद वेदवती कठोर तपश्चरण करके आयु के अंत में ब्रह्मस्वर्ग के देव (राम) की नियोगिनी देवी हुई, वहाँ के सुखों का उपभोग कर पुण्योदय से अगले भव में राजा जनक की पुत्री सीता हुई।

रावण का जीव जो शम्भू के भव में था, वह वेदवती के न मिलने से बहुत दुखी हुआ एवं दुर्बुद्धि होने से उन्मत्त अवस्था को प्राप्त हुआ अब वह दुष्ट प्रकृति का शम्भू मद्य–मांस आदि का सेवन करता, हिंसात्मक प्रवृत्ति करता और दिगम्बर मुनियों को देखकर उनकी हँसी उड़ाता, उनके प्रति दुष्ट वचन कहता। इसप्रकार निरंतर पाप में रत वह तीव्र दुख के स्थान नरक, तिर्यंच गति में बहुत लम्बे काल तक भ्रमण करता हुआ एकबार पुण्योदय से कुशध्वज ब्राह्मण की स्त्री सावित्री के गर्भ से प्रभासकुंद नामक पुत्र हुआ और योग पाकर दुर्लभ रत्नत्रय की आराधना हेतु विचित्रसेन मुनि के समीप जिनदीक्षा धारण कर उग्र तपश्चर्या करने लगा।

एकबार विचित्रसेन मुनिराज ससंघ विहार करते हुए सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्र की वंदना के लिए गये। यद्यपि उनके संघ के समस्त मुनिराजों का मन समुद्र की तरह शान्त था तथापि आकाश में कनकप्रभ नामक विद्याधर की विभूति रूपी हवा का निमित्त पाकर प्रभासकुंद मुनि का मन क्षुब्ध हो गया और उन्होंने निदान किया कि 'मुझे वैभव से रहित मुक्तिपद की आवश्यकता नहीं है, यदि मेरे तप में कुछ माहात्म्य है तो मैं ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करूँ।' अहो ! **मूर्खता तो देखो कि उसने त्रिलोक पूज्य अमूल्य रत्न को एक मुट्ठी शाक में बेच दिया।**

जिसकी आत्मा निदान से दूषित हो चुकी थी – ऐसा प्रभासकुन्द,

अत्यन्त विकट तप कर सनत्कुमार स्वर्ग में आरूढ़ हुआ और वहाँ भोगों का उपभोग करने लगा। तत्पश्चात् भोगों के स्मरण करने में जिसका मन लग रहा था ऐसा वह देव अवशिष्ट पुण्य के प्रभाव वश वहाँ से च्युत हो रावण हुआ।

इस प्रकार तुम सभी पूर्व प्रीति से तथा पुण्य के प्रभाव से पुण्यकर्मा राम के साथ प्रीति रखने वाले हुए हो।

इसप्रकार यहाँ राम, सीता, लक्ष्मण और रावण के पूर्वभवों का वर्णन पूर्ण हुआ, जिससे हमने यह सीखा कि **किसी से बैर नहीं करना चाहिए और ना ही किसी परवस्तु की इच्छा ही करनी चाहिए, क्योंकि तत्संबन्धी उदय के बिना उस वस्तु की प्राप्ति तो होती नहीं है, उल्टा नवीन अशुभकर्म का बंध हो जाता है, जिससे नरकादि गतियों में सागरों पर्यंत भयंकर दुख भोगने पडते हैं।**

(नोट :– यद्यपि पद्मपुराण सर्ग 106 में राम, लक्ष्मण, सीता और रावण आदि के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है। तथापि हमने उनके पूर्वभवों का वर्णन कथा के आरम्भ में इसलिए किया है, ताकि वर्तमान भव की चर्चा करते हुए श्रीराम के निर्वाण पूर्वक कथा का सुखपूर्वक समापन किया जा सके।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह भी प्रतीत हुआ कि हमारा उद्देश्य तो मुख्य रूप से बलभद्र राम, नारायण लक्ष्मण, और प्रतिनारायण रावण आदि के चरित्र को प्रस्तुत करना है एवं गौणरूप से सीता, सुग्रीव, बालि, कुंभकरण, विभीषण आदि का वर्णन करना है।

पूर्वभवों की चर्चा करना इसलिए अनिवार्य लगा कि "बैर की परम्परा भव–भव में हमें कैसे भयंकर कष्टों में धकेल देती है।" – यह जानकर हम अपने जीवन में आये कष्टों के समय को सावधान होकर समताभाव पूर्वक विरक्तचित्त हो, बैर की परम्परा का नाश कर, श्रीराम आदि के चरित्र को पढ़कर सुखमयी मुक्ति की ओर शीघ्र अग्रसर हो सकें।)

श्री पद्म (राम) चरित्र

अब रामचंद्र आदि के वर्तमान भव का संक्षेप में वर्णन आरम्भ करते हैं, जो भव्यजीवों के परम कल्याण में निमित्त होगा।

इस भरतक्षेत्र की अयोध्यानगरी के इक्ष्वाकुवंश में भगवान ऋषभ देव से लेकर मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर पर्यंत के काल में असंख्यात राजा मोक्षगामी हुए हैं, उसी क्रम में रघु राजा हुए हैं। उन रघु राजा के पुत्र अनरण्य एवं अनरण्य के पुत्र दशरथ अयोध्या के राजा बने।

राजा दशरथ सम्यग्दर्शन से सुशोभित थे, उन्होंने भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाये हुए अद्भुत जिनालयों का जीर्णोद्धार कराके उन्हें पुनः नवीन जैसे करा दिये।

दशरथ राजा की कौशल्या, सुमित्रा, केकयी और सुप्रभा – ये चार रानियाँ थीं। उन्हें चारों रानियों द्वारा अनुक्रम से राम (आठवें बलभद्र) लक्ष्मण (आठवें नारायण) भरत-शत्रुघ्न – ये चार पुत्र हुए। राम का मूल नाम 'पद्म' था, इसलिए उनकी कथा पद्मपुराण अथवा पद्मचरित्र कहलाती है।

रानी केकयी ने स्वयंवर के समय छद्मवेश में आये राजा दशरथ का वरण किया, फलस्वरूप अन्य राजाओं ने उनसे युद्ध शुरु कर दिया उस युद्ध में राजा दशरथ ने विजय प्राप्त की। उनकी इस विजय में केकयी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस कारण राजा दशरथ ने प्रसन्न होकर उसे एक वरदान माँगने को कहा, जिसे रानी केकयी ने बाकी रखा था।

पाठकगण ! रानी केकयी जैनधर्म की जानकार, सम्यग्दर्शन की धारी और व्रतों का पालन करनेवाली थी, शास्त्र और शस्त्र दोनों

विद्याओं में निपुण थी; वह दुष्ट या दुर्गुणी नहीं थी, परन्तु वह तो सज्जन-धर्मात्मा-श्राविका थी। वचन बाकी रखने में उसका कोई दुष्ट हेतु नहीं था, उसका उसे विवेक था कि बिना प्रयोजन के क्या माँगे।

अरे रे, जगत के अज्ञानी जीव धर्मात्मा को पहचान नहीं सकते, अपने राग-द्वेष के अनुसार धर्मात्मा में भी मिथ्या दोषारोपण करके विपरीत रूप में ही देखते हैं। धर्मात्मा के सच्चे गुणों और महान चरित्र को पहचानें तो जीव का कल्याण हो जाये। जैनधर्म के पुराण धर्मात्मा के गुणों की सच्ची पहचान कराते हैं कि कैसे-कैसे गंभीर प्रसंगों में भी धर्मात्मा अपने उत्तम गुणों की आराधना टिकाये रखते हैं – यह बतलाकर जीवों में आराधना का उत्साह जगाते हैं; इसलिए जैन पुराणों का पठन-श्रवण मुमुक्षु जीवों को उपयोगी जानकर करना चाहिये।

यद्यपि यहाँ श्री पद्मचरित्र लिखने की भावना भायी है। तथापि श्री राम के जन्म से हजारों वर्ष पहले रावण का जन्म हो चुका था, वह आठवें प्रतिरानरायण के रूप में जन्मा था, अत: प्रथम ही संक्षिप्त में रावण के सन्दर्भ में कथन करना उचित प्रतीत होता है। रावण के पिता का नाम रत्नश्रवा और माता का नाम केकसी था।

रावण का जन्म – एक दिवस रानी केकसी ने रात्रि के चौथे पहर में तीन अद्भुत स्वप्न देखे। प्रात: अपने पति राजा रत्नश्रवा से उनका फल पूछा – अष्टांग निमित्त के ज्ञाता राजा ने बताया कि महाबली गरजते हुए सिंह को देखने का फल है कि 'तुम्हारा प्रथम पुत्र आठवाँ प्रतिनारायण होगा, वह क्रूर परिणामी होगा।' दूसरे, सूर्य अपनी किरणों से अंधकार का नाश करके तुम्हारी गोद में आ बैठा – इसका फल है कि 'तुम्हारा दूसरा पुत्र भानुकर्ण (कुंभकर्ण) होगा, जो तद्भव मोक्षगामी होगा।' और तीसरे अखण्ड चन्द्रमा को देखने का फल है कि 'तुम्हारी चन्द्रसमान सुन्दर पुत्री होगी, जिसका नाम चन्द्रनखा होगा।'

जब सर्वप्रथम गर्भ में रावण आया, तब माता की चेष्टा कुछ क्रूर हुई, उसे यह इच्छा हुई कि मैं शत्रुओं के सिर पर पाँव रखूँ। इसके बाद यथासमय क्रमशः कुंभकर्ण, चन्द्रनखा एवं विभीषण को रानी केकसी ने जन्म दिया।

जिसकी एक हजार नागकुमार देव रक्षा करते थे, ऐसा व्यन्तरदेवों के इन्द्र भीम से रावण के पूर्वजों को प्राप्त दैवी हार को यह तेजस्वी बालक रावण पहले ही दिन खींचकर खेलने लगा। बालक को हार से खेलता हुआ देखकर माता केकसी को बहुत आश्चर्य हुआ।

पिता रत्नश्रवा बोले – चारणऋद्धिधारी मुनिराज ने मुझे पहले ही कहा था कि तेरे महान पदवीधारक पुत्र होगा, सो यह प्रतिनारायण शलाका पुरुष हुआ है। – यह सुनकर माता केकसी ने निर्भय होकर वह हार उस बालक को पहना दिया। उस हार में लगे हुए स्वच्छ नवरत्नों में बालक का मुख प्रतिबिम्बित होने लगा। अतः उस बालक का नाम '**दशानन**' चल पड़ा।

बड़े होने के बाद रावण माता-पिता को नमस्कार करके, णमोकार मंत्र बोलते हुए, 'भ्रम' नामक महावन में विद्या-साधने के लिए दोनों भाइयों को साथ लेकर चला गया। **जैसे मुनिराज तप की आराधना करते हैं,** वैसे ही विद्याधर विद्या की आराधना करते हैं। अल्पकाल में ही रावण को अनेकानेक विद्याएँ प्राप्त हुईं। भानुकर्ण को पाँच तथा विभीषण को चार विद्याएँ सिद्ध हुईं।

रावण ने विद्या के प्रभाव से एक स्वयंप्रभ नामक नगर बसाया और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा।

अहो, ''पुण्योदय से जीव को लौकिक-लक्ष्मी मिलती है, और भेद-विज्ञान से मोक्ष-लक्ष्मी मिलती है। भेद-विज्ञान के अभाव में संसार का बीजभूत मिथ्यात्व एवं राग-द्वेष होता

है और भेद-विज्ञान से मोक्ष होता है। अत: हमें देह और आत्मा में भेद-विज्ञान करना ही श्रेयस्कर है।''

एक दिन राजा वैश्रवण को आकाशमार्ग से जाते हुए देखकर किशोर अवस्था को प्राप्त रावण ने माता से पूछा कि 'यह कौन है ?'

माता – ''यह तेरी मौसी का बेटा है, सर्वविद्या का धारी महालक्ष्मीवान है और राजा इन्द्र का लोकपाल है। राजा इन्द्र ने तुम्हारे बड़े दादा माली को युद्ध में जीतकर तुम्हारी कुलभूमि लंका का शासक इसे नियुक्त कर रखा है। परन्तु **जैसे मिथ्यादृष्टि अनेक क्रियायें करने पर भी सम्यक्त्व को नहीं पाता,** वैसे ही लंका पाने के लिये तेरे पिता ने अनेक मनोरथ किये, पर लंका को वापस नहीं पा सके।

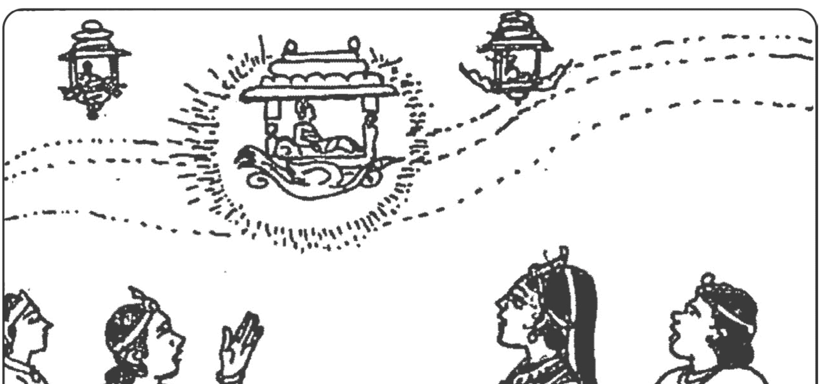

रावण – ''हे माता ! गर्व की बात नहीं है, पर तुम्हारे संदेह के निवारण हेतु मैं सत्य कहता हूँ कि यदि ये समस्त विद्याधर एक होकर मुझसे युद्ध करें तो भी मैं सबको एक ही भुजा से जीत लूँगा।

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के विद्याधर राजा मय ने अपनी पुत्री मंदोदरी का रावण के साथ विवाह कर दिया। यद्यपि बाद में

रावण का हजारों कन्याओं के साथ विवाह हुआ; किन्तु रानी मंदोदरी उन सबमें शिरोमणि रही। रावण के इन्द्रजीत और मेघवाहन आदि हजारों पुत्र हुए।

कुम्भपुर के राजा महोदर की पुत्री तडिन्माला के साथ **भानुकर्ण** का विवाह हुआ। कुम्भपुर नगर पर आक्रमण के कारण वहाँ की प्रजा के दुःख को सुनकर उनका सहयोग करने से, वहाँ की प्रजा उन्हें 'कुम्भकर्ण' कहने लगी।

विजयार्धगिरि की दक्षिण श्रेणी के राजा विशुद्धकमल की पुत्री राजीवसरसी के साथ **विभीषण** का विवाह हुआ।

ज्ञातव्य है कि ''रावण व विभीषण की तरह **कुम्भकर्ण भी राक्षस नहीं, विद्याधर थे।** कुम्भकर्ण धर्म में आसक्त, बुद्धि में बलवान तथा अनेक कलाओं में प्रवीण थे। वे मुनि-आर्यिकाओं को आहार देकर तथा भूखे जीवों को भोजन देकर ही अत्यन्त अनासक्त भाव से पवित्र एवं शुद्ध आहार करते थे, इसीप्रकार वे रात्रि में श्वाननिद्रा की भाँति अल्प निद्रा लेते थे, उनके द्वारा माँस आदि के भक्षण करने की बात तो बहुत दूर की है, उनका तो एक चींटी के मर जाने पर भी हृदय करुणा से भर जाता था।

उनके बारे में लोक में प्रचलित बातें नितान्त मिथ्या हैं।

भगवान इन्द्रजीत, भगवान कुंभकर्ण आदि के वीतरागी स्वरूप को पहिचानो, जिससे तुम्हें उन मोक्षगामी महान सत्पुरुषों के अवर्णवाद का दोष न लगे तथा रत्नत्रयमार्ग का उत्साह जागृत हो। कुंभकर्ण तथा इन्द्रजीत ने चूलगिरी-बड़वानी से निर्वाण प्राप्त किया, उन्हें हमारा नमस्कार हो।

जिनने जिनशास्त्रानुसार तुंगीगिरि से निर्वाण प्राप्त किया है। –

ऐसे भगवान रामचंद्र, भगवान हनुमान, भगवान सुग्रीव, भगवान नील, भगवान महानील, भगवान गव, भगवान गवाख्य आदि हजारों महापुरुष हो गये हैं, जिनका जैन पुराणों में विस्तार से वर्णन आता है। जिन-शास्त्र तो रत्नों के भंडार हैं, जिन-शास्त्रों के अनुसार वस्तु के सत्य स्वरूप को जानते ही मिथ्यावादियों के पाप धुल जाते हैं और अपूर्व हितकारी भाव प्रगट होते हैं।''

अब कथा आगे बढ़ती है – जिन-जिन नगरों में वैश्रवण का राज्य था, वहाँ कई बार कुम्भकर्ण ने धावा बोला और उसका माल छीनकर स्वयंप्रभ नगर ले आये। अतः वैश्रवण के दूत ने रावण के दादा सुमाली से आकर कहा – ''हे राजन् ! तुम पण्डित हो, कुलीन हो, लोक-रीति के जानने वाले हो, बड़े हो, अकार्य से भयभीत हो। आप बच्चों को मना क्यों नहीं करते?

दूत के वचनों को सुनकर रावण ने गरजकर कहा – ''अरे दूत! तुझे दूत जानकर छोड़ रहा हूँ, तुम अपने राजा से जाकर कह दो कि अपनी शक्ति का इतना ही घमण्ड है तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।''

परिणामस्वरूप दोनों ओर के योद्धाओं में बड़ा भारी युद्ध हुआ।

रावण को रणक्षेत्र में सामने आता देखकर वैश्रवण क्षणभर के लिये भाई के प्रति स्नेह से भर उठा; अत: वह रावण से बोला –

''हे दशानन ! यह राज्यलक्ष्मी क्षणभंगुर है। इसके निमित्त तू क्यों पाप कार्य करता है ?'' पर दयाहीन रावण ने वैश्रवण के कोमल हृदय पर भिण्डिमाल नामक अस्त्र से प्रहार किया, जिससे वैश्रवण मूर्छित हो गया। कुछ समय बाद स्वस्थ होने पर वैश्रवण ने राज्यलक्ष्मी से उदास हो संसार से विरक्त हो दिगम्बरी दीक्षा धारण करली।

''वास्तव में सुख-दुःख का मूल कारण इस जीव द्वारा उपार्जित कर्म ही है। अन्य प्राणी तो निमित्त मात्र हैं। संसार के स्वरूप को जानने वाले ज्ञानी इनसे क्रोध नहीं करते हैं। रावण और कुम्भकर्ण वैश्रवण के कल्याण में निमित्त ही सिद्ध हुए। **इस संसार के सब कार्य कर्माधीन हैं। उसके फल में जितना अधिक यह जीव जुड़ता है, उतना ही राग-द्वेष बढ़ता है। राग-द्वेष से जीव दुःखी होता है।** अतः हमें भी वैश्रवण की तरह संसार से विरक्त हो धर्मसन्मुख होना चाहिए।

इसीप्रकार रावण ने अपने पूर्वजों से हरण की गई लंका को वापस लेने हेतु राजा इन्द्र को युद्ध में परास्त किया लंका का अधिपति बन गया।

राजा इन्द्र ने निर्वाणसंगम मुनिराज से अपने पूर्वभवों का वर्णन सुनकर संसार से विरक्त हो जैनेश्वरी दीक्षा धारण करली तथा उसी भव से निर्वाण प्राप्त किया।

एक दिन जब रावण लंका से बाहर गया था तब खरदूषण ने रावण की बहन चन्द्रनखा का हरण कर लिया। यद्यपि इस घटना से रावण को बहुत क्रोध आया, परन्तु मंदोदरी के विनयपूर्वक इसप्रकार समझाने पर कि – ''यदि आप खरदूषण को मारेंगे तो चन्द्रनखा विधवा हो जायेगी और फिर खरदूषण चौदह हजार विद्याओं का स्वामी है; उसे चन्द्रनखा देने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।'' रावण ने उसे क्षमा कर चन्द्रनखा का उससे विवाह कर दिया।

अनंतवीर्य मुनिराज को केवल्य की प्राप्ति – एकबार श्री अनंतवीर्य मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। मंगल बाद्य बजाते हुए देवों तथा विद्याधरों के समूह आकाश मार्ग से उनका केवलज्ञान-महोत्सव मनाने आये। हनुमान भी भगवान के दर्शन करने के लिए गये। लंकाधिपति

महाराजा रावण एवं इन्द्रजीत, कुंभकरण, विभीषण वगैरह भी प्रभु के केवलज्ञान-उत्सव में आये तथा भक्ति भाव से प्रभु की वंदना करके धर्मसभा में उपदेश सुनने के लिए बैठ गये।

तभी चारों ओर सत्यानंद फैलाती हुई दिव्यध्वनि खिरने लगी; भव्यजीव हर्ष-विभोर हो गये। **जैसे तीव्र गर्मी में मेघवर्षा होते ही जीवों को शांति हो जाती है, वैसे ही संसार-क्लेश से संतप्त जीवों का चित्त दिव्यध्वनि की वर्षा से अत्यंत शांत हो गया।**

दिव्यध्वनि में आया – ''**अहो जीवो ! संसार की चारों गतियों के कारणभूत शुभाशुभभाव दु:खरूप हैं; आत्मा की मोक्षदशा ही परम–सुखरूप है** – ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसकी साधना करो। **राग रहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही आनन्दरूप हैं।**

हे भव्यजीवो ! तुम अपना हित कर लो, ये संसार-सागर में खोया हुआ मनुष्य-रत्न फिर हाथ आना बड़ा दुर्लभ है। इसलिए जैन-सिद्धांत के अनुसार तत्त्वज्ञान पूर्वक मुनिधर्म या श्रावकधर्म का पालन करके आत्मा का हित करो।''

इसप्रकार श्री अनंतवीर्य केवली प्रभु की दिव्यध्वनि एकाग्रचित पूर्वक रावण, हनुमान आदि भी भक्ति से सुन रहे हैं – ऐसा सुन्दर वीतरागी धर्म का उपदेश सुनकर देव, मनुष्य और तिर्यञ्च – सभी आनंदित हुए; कितने ही जीवों ने साक्षात् मोक्षमार्गरूप मुनिपद धारण किया, कितनों ने श्रावकव्रत अंगीकार कर लिये, कितने ही जीव कल्याणकारी अपूर्व सम्यक्त्व धर्म को प्राप्त हुए। हनुमान, विभीषण आदि ने भी उत्तम भाव से श्रावकव्रत धारण किये। अन्य अनेकों जीवों ने भी अपनी-अपनी शक्ति अनुसार अनेक प्रकार के व्रत-नियम लिये।

ज्ञातव्य है कि इसी प्रसंग पर एक मुनिराज ने रावण से कहा – ''हे

भद्र ! तुम भी कुछ नियम ले लो। **भगवान का यह समवशरण तो धर्म-रत्नद्वीप समान है; इस रत्नद्वीप में आकर तुम भी कुछ नियमरूपी रत्न ले लो, महापुरुषों के लिए त्याग कोई खेद का कारण नहीं।''**

यह सुनकर जैसे रत्नद्वीप में प्रवेश करने वाले किसी मनुष्य का मन घूमने लगता है कि ''मैं कौनसा रत्न लेऊँ ? ये लेऊँ कि ये लेऊँ?'' वैसे ही राजा रावण का चित्त घूमने लगा – ''मैं कौनसा नियम लेऊँ?''

''मेरा खान-पान तो सहज ही पवित्र है, माँसादि मलिन वस्तुओं से रहित ही मेरा आहार है; परंतु मतवाले हाथी जैसा भोगासक्त मेरा मन महाव्रत का भार उठाने में तो समर्थ नहीं। अरे, महाव्रत की तो क्या बात? परन्तु श्रावक का एक भी अणुव्रत धारण करने की मेरी शक्ति नहीं। अरे रे ! मैं महा शूरवीर होने पर भी व्रत-तप धारण करने में असमर्थ हूँ।

अहो, वे महापुरुष धन्य हैं कि जिन्होंने महाव्रत अंगीकार किये हैं। वे श्रावक भी धन्य हैं जिन्होंने अणुव्रत अंगीकार किए हैं। मैं महाव्रत या अणुव्रत तो नहीं ले सकता, पर एक छोटा सा नियम तो जरूर लेऊँ।''

रावण ने विचार किया कि ''जगत में ऐसी कौनसी स्त्री है कि जो मुझे देखकर मोहित न हो अथवा ऐसी वह कौन परस्त्री होगी ? जो मेरे (विवेकी-पुरुष के) मन को डिगा सके ?'' – इसप्रकार विचार कर रावण ने अनंतवीर्य केवली के समक्ष प्रतिज्ञा ली कि –

''**हे देव ! मैं ऐसा नियम लेता हूँ कि जो पर-नारी मुझे चाहती न हो, उसे मैं नहीं भोगूँगा।** चाहे वह पर-स्त्री कितनी ही रूपवान क्यों न हो, तो भी मैं बलात् उसका सेवन नहीं करूँगा।''

लंकानगरी का महाराजा रावण, हजारों राजा जिसकी सेवा करते हैं, १८,००० जिसकी रानियाँ हैं, भरतक्षेत्र के विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण दिशा के तीन खंडों का जो अधिपति है, जिसके यहाँ दैवी सुदर्शन चक्र

प्रगट हुआ, सभी राजाओं ने मिलकर अर्द्धचक्रवर्ती के रूप में जिसका राज्याभिषेक किया; वह राजा रावण मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के शासनकाल में आठवाँ प्रतिवासुदेव हुआ था; राक्षसवंशी विद्याधर राजाओं के कुल का वह तिलक था, वह माँसाहारी नहीं था, वह तो शुद्ध भोजन करने वाला जिनभक्त था। लंकानगरी की शोभा अद्‌भुत थी उसके राजभवन में १००८ श्री शांतिनाथ भगवान का अति मनोहर एक जिनालय था; वहाँ जाकर रावण जिनेन्द्र भक्ति करता और विद्या भी साधता था। **वह राक्षस नहीं, राक्षसवंशी था।**

राक्षसवंश एवं बानर वंश की उत्पत्ति का इतिहास जो प्रभु की वाणी में आया, उसका सार इसप्रकार है –

राक्षसवंश एवं वानरवंश की उत्पत्ति का इतिहास

राजा महारक्ष ने अपने बड़े पुत्र अमररक्ष को राज्य और छोटे पुत्र भानुरक्ष को युवराज पद देकर, स्वयं समस्त परिग्रह का त्याग कर मुनिव्रत अंगीकार कर लिए। और आत्मसाधना सहित समाधिमरण करके स्वर्ग में उत्तम देव हुए।

अमररक्ष एवं भानुरक्ष राज्य के साथ-साथ निरन्तर भेदज्ञान की भावना में तत्पर रहते हुए, कर्म और कर्म के फल को साक्षी-भाव से देखते थे। राज्य और राज्य-सम्बन्धी क्रिया-कलापों के प्रति उनके अन्तरंग में अपनापन नहीं था। वे उसे मात्र कर्मफल मानते थे। वे शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म धारण कर घोर तप करके स्वभाव की एकता के द्वारा मोक्षपद को प्राप्त हुए।

आगे जाकर इसी वंश में मनोवेग नामक राजा हुए। उनकी मनोवेगा नामक रानी से 'राक्षस' नामक महाप्रतापी और अत्यंत प्रभावशाली पुत्र हुआ, जिसके नाम से 'राक्षसवंश' चला। बाद में रावण, कुंभकर्ण, विभीषण आदि सभी इसी कुल में उत्पन्न हुए।

इसीप्रकार वानरवंश की उत्पत्ति का इतिहास सुनो – लाखों वर्ष पूर्व इस भारतभूमि पर राजा वज्रकंठ और राजा श्रीकंठ हुए। वज्रकंठ के इन्द्रायुधप्रभ उसके बाद इन्द्रमत, मेरु, मन्दर, समीरणगति आदि वंश परम्परा में रविप्रभ हुए और रविप्रभ के अमरप्रभ नामक पुत्र हुआ।

राजा अमरप्रभ की रानी गुणवती जब विवाह कर सर्वप्रथम महल में आई, तब उसने महल में अनेक चित्र देखे। उनमें एक स्थान पर पाँच प्रकार के रत्नों के चूर्ण से निर्मित बन्दरों का रूप देखते ही रानी गुणवती भयभीत हो काँपने लगी, राजा अमरप्रभ यह देखकर अपने सेवकों पर बहुत नाराज़ हुए कि मेरे महल में ये बन्दरों के चित्र किसने बनवाये हैं ? जिन्हें देखकर मेरी रानी डर गई।

तब एक वृद्ध पुरुष ने कहा – ''महाराज ! इसमें किसी का भी अपराध नहीं है। आप प्रसन्न होकर हमारी विनती सुनिये –

आपके वंश में पहले एक श्रीकंठ नामक महान राजा हुए हैं। वे एकबार यहाँ पर्यटन हेतु आये थे। वे यहाँ इन बन्दरों को देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए थे। **जैसे रागादिक भाव कर्मबंध के मूल कारण हैं,** उसी प्रकार राजा श्रीकंठ इस नगर को बसाने में मूल कारण हैं, राजा श्रीकंठ इन बन्दरों के साथ खेले, इन्हें मीठे और और स्वादिष्ट फल दिये और इनके चित्राम बनवाये। बाद में उनके वंश में जो भी राजा हुए, उन्होंने भी अपने मांगलिक कार्यों में इनके चित्राम बनवाये थे, तो अब इन्हें भूमि पर मत डालो, जहाँ कि मनुष्यों के पाँव लगें।''

तब अमरप्रभ ने कहा – फिर तो मैं इन्हें अपने मुकुट में रखूँगा। और सेवकों को आदेश दिया कि ध्वजाओं पर, महलों में तथा छतों के शिखरों पर भी इनके चित्र बनवाओ।

तदनन्तर राजा अमरप्रभ के पुत्र कपिकेतु हुए। राजा अमरप्रभ

पुत्र को राज्य सौंपकर मुनि हुए। कपिकेतु की सर्वगुण-सम्पन्न रानी श्रीप्रभा थी। राजा कपिकेतु भी अपने पुत्र प्रतिबल को राज्य देकर वैरागी हो गये। इस प्रकार वानरवंशियों के वंश में अनेक राजा राज्य को त्याग, वैराग्य धारण करके स्वर्ग या मोक्ष को प्राप्त हुए। ये विद्याधर अपने महलों की छतों पर तथा ध्वजाओं पर वानरों के चिन्ह रखते थे, इसलिये वानरवंशी कहलाये।''

इसप्रकार केवली प्रभु की सभा में आनन्द से धर्म श्रवण करके तथा व्रत-नियम अंगीकार करके सभी अपने-अपने स्थान पर चले गये।

रावण के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमने श्रीरामचरित्र लिखने की भावना भायी है। अत: अब हम पुन: श्रीराम के पिता राजा दशरथ की अयोध्या नगरी चलते हैं।

अयोध्या नगर के राजा दशरथ :– अयोध्या नगरी पहुँचने पर हम क्या देखते हैं कि राजा दशरथ राजसभा में बैठे हैं और उसी समय उत्तमबुद्धि के धारक नारदजी वहाँ आ जाते हैं। राजा दशरथ उनको बड़े आदर से आसन पर विराजमान होने हेतु विनय करते हैं। उसके बाद नारद से संकेत पाकर राजा एकान्त करा देते हैं।

तब नारद कहते हैं – ''हे राजन् ! तुम चित्त लगाकर सुनो, मैं तुम्हारे भले की बात कहता हूँ। मैं जिनेन्द्र भगवान का भक्त हूँ। जहाँ भी जिनमन्दिर होते हैं, वहाँ मैं जिनवन्दना करने चला जाता हूँ। अतः मैं त्रिकूटाचल के शिखर पर स्थित भगवान शान्तिनाथ के जिनालय की वन्दना हेतु लंका में गया था। वहाँ मैंने रावण के विभीषण आदि मंत्रियों का एक निश्चय सुना है।

रावण ने सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी से पूछा था कि मेरी मृत्यु का निमित्त कौन होगा? तब निमित्तज्ञानी ने उसे बताया था कि राजा दशरथ के पुत्र और राजा जनक की पुत्री के निमित्त से तुम्हारी

मृत्यु होगी। रावण यह सुनकर अतिचिंतित हो गया। तब विभीषण ने रावण से कहा कि आप चिंता मत करो, मैं उन दोनों को उनके पुत्र-पुत्री होने से पहले ही मार दूँगा। सो हे राजन् ! जब तक वह विभीषण आपको मारने का उपाय करे, उससे पूर्व ही आप कहीं छिप जाइये और मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। मैं यही समाचार राजा जनक को भी बतलाने के लिये जाता हूँ।''

राजा दशरथ ने उठकर नारद को आदरपूर्वक विदा किया। नारद आकाशमार्ग से मिथिलापुरी पहुँच गये और राजा जनक से भी उन्होंने सारा समाचार कह दिया।

इधर राजा दशरथ ने अपने मंत्री समुद्रहृदय को एकांत में बुलाकर नारद द्वारा कही सारी बात बताई। मंत्री बोला – ''हे नाथ ! जब तक मैं आपके बैरियों का उपाय करता हूँ, तब तक आप अपना रूप बदलकर देशान्तर में भ्रमण कीजिये।''

राजा दशरथ नगर से बाहर निकल गये। मंत्री ने राजा दशरथ का एक पुतला तैयार करवाया। उस पुतले और दशरथ में इतना ही अन्तर था कि पुतले में चेतना न थी। पुतले में लाख के रस से रुधिर भी बनाया गया था। फिर उस पुतले को महल की सातवीं मंजिल पर विश्राम करने की मुद्रा में शय्या पर लिटा दिया और लोगों में यह अफवाह फैला दी गई कि राजा दशरथ बीमार हैं।

ठीक यही उपाय राजा जनक के विषय में भी किया गया।

एक दिन विभीषण ने स्वयं ही आकर राजा दशरथ के महल में प्रवेश किया। वहाँ उसने दशरथ को शय्या पर लेटे हुए देखा। विभीषण स्वयं तो दूर खड़ा रहा; किन्तु अपने विद्युद्विलसित नामक विद्याधर को राजा दशरथ का मस्तक छेदने का आदेश दिया। उसने राजा दशरथ का मस्तक काट लाया। विभीषण ने दशरथ एवं जनक

के सिरों को समुद्र में फेंक दिया और इसप्रकार रावण को खुश कर दिया।

इधर राजमहल के सब लोग दहाड़ मारकर रोने लगे। दोनों राजाओं की रानियाँ बहुत विलाप करने लगीं; परन्तु बाद में यह जानकर प्रसन्न हो गयीं कि ये तो कृत्रिम पुतले थे।

तदनन्तर किसी समय जब विभीषण का चित्त शान्त हुआ, तब वह पश्चाताप करता हुआ इसप्रकार विचारने लगा कि मेरे कौन से कर्म का उदय आया कि मैंने भाई के मोह में आकर, व्यर्थ ही डरकर बेचारे भूमिगोचरियों को मार डाला।

देखो, **मोह कि विचित्रता कि विभीषण जैसे विद्वान् ने भी ऐसा अनुचित कार्य कर डाला। कषाय के वशीभूत होकर यह संसारी जीव क्या-क्या नहीं करता ?**

राम का जन्म – कुछ दिनों पश्चात् एक दिन रात्रि के अंतिम प्रहर में रानी कौशल्या (अपराजिता) ने चार अद्भुत स्वप्न देखे – सफेद हाथी, पराक्रमी सिंह, सूर्योदय और सर्वकलाओं से पूर्ण चन्द्रमा। इन अद्भुत स्वप्नों को देखकर वह बहुत आश्चर्यचकित हुई।

प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर वह पति के पास गयी और उन्हें स्वप्नों का वृत्तांत सुनाया। राजा ने उन स्वप्नों का फल बताया कि ''हे कांते ! तेरे परम आश्चर्यकारी मोक्षगामी पुत्र होगा, जो अंतर्बाह्य शत्रुओं का विजेता होगा। राग-द्वेष-मोहादि अंतरंग शत्रु हैं और प्रजा के बाधक दुष्ट राजा आदि बहिरंग शत्रु हैं।''

अथानन्तर दिनोंदिन गर्भ बढ़ने लगा और रानी कौशल्या को तत्त्वचर्चा में अतिरुचि होने लगी। वह महाराजा दशरथ से भाँति-भाँति के प्रश्न कर उनसे अपनी शंकाओं के समाधान पाने लगी।

एक दिन रानी कौशल्या ने पूछा – हे स्वामी ! जिनशासन में णमोकार मंत्र की बड़ी महिमा है, मैं उसका अर्थ सुनना चाहती हूँ। राजा दशरथ ने हर्षित होकर बताया –

"**णमोकार मंत्र एक अद्वितीय मंत्र है। इसमें किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं है।** यह तो आत्मा की विभिन्न अवस्थाओं का द्योतक है। आचार्य, उपाध्याय और साधु अवस्थाएँ साधक हैं और अरिहंत-सिद्ध अवस्थाएँ साध्य हैं। **जिन्होंने मोहादि का सर्वथा अभाव किया, वे अरिहंत हैं, जिन्होंने स्वभाव की पूर्ण उत्कृष्टता को प्राप्त किया, वे सिद्ध हैं तथा जो स्वभाव की प्राप्ति और विकार के नाश में लगे हैं, वे साधु हैं।** इसप्रकार णमोकार मंत्र का उच्चारण करते हुए, हमारा ध्यान कषाय के नाश पर और स्वभाव की प्राप्ति पर आए। हमारे भावों में इसी बात की पुष्टि हो तो हमारा श्रद्धान दृढ़ हो और आत्मा उस भाव-रूप परिणत हो, यही उसका फल है।

पंचपरमेष्ठी पर्यायरूप हैं और अपना चैतन्यस्वभाव द्रव्यरूप है, जिसकी शरण लेने से पंचपरमेष्ठी पद प्राप्त होता है। – ऐसे चैतन्य स्वभाव की भावना से पंचपरमेष्ठी बनने का आत्मबल जागृत हो। इसप्रकार णमोकार मंत्र का अर्थ समझकर रानी कौशल्या अत्यन्त प्रसन्न हुई।"

गर्भ समय पूर्ण होने पर उनके पुत्र का जन्म हुआ। राजा दशरथ ने पुत्र-जन्म का मनोहारी उत्सव किया, याचकों को बहुत धन दिया। बालक का वर्ण उगते हुए सूर्य के समान था, नेत्र कमल के समान थे और वक्षस्थल लक्ष्मी से आलिंगित था। अतः उसका नाम 'पद्म' रखा गया।

लक्ष्मण का जन्म – एक दिन रानी सुमित्रा ने भी तीन शुभ

स्वप्न देखे – केसरी सिंह जिसे लक्ष्मी एवं कीर्ति देवियाँ कलशों से स्नान करा रही हैं, समुद्र रूपी मेखला से सुशोभित विस्तृत पृथ्वी, सूर्य के समान सुशोभित व नाना प्रकार के रत्नों से मण्डित सुन्दर चक्र।

प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर सुमित्रा पति के पास गयी और उन्हें स्वप्नों की बात बतायी। राजा ने कहा – हे मित्रे ! तेरे शत्रुओं के समूह का नाशक, पूरी पृथ्वी पर प्रसिद्ध होनेवाला और सुदर्शन चक्र का धारी पुत्र होगा। समय आने पर सुमित्रा रानी ने एक परमज्योतिधारी पुत्र को जन्म दिया, मानो रत्नों की खान में कोई रत्न ही उत्पन्न हुआ हो। श्री राम के जन्मोत्सव की भाँति ही इस पुत्र का भी जन्मोत्सव मनाया गया। माता-पिता ने इस बालक का नाम लक्ष्मण रखा। जिस दिन सुमित्रा के पुत्र का जन्म हुआ, उसी दिन रावण के नगर में हजारों उपद्रव हुए।

भरत और शत्रुघ्न का जन्म – तत्पश्चात् रानी केकयी के एक दिव्यरूपधारी, महाभाग्यशाली, पृथ्वी-प्रसिद्ध पुत्र हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। रानी सुप्रभा के भी सर्वलोक में सुन्दर और शत्रु-विजेता पुत्र हुआ, जिसका नाम शत्रुघ्न रखा।

चारों ही पुत्रों को पिता ने विद्याध्ययन हेतु योग्य अध्यापकों को सौंप दिया। समयानुसार वे चारों पुत्र अस्त्र-शस्त्र कला तथा सर्वशास्त्रों में अति प्रवीण हो गये। राजा दशरथ उनके ज्ञान, विनय और उदार चेष्टा देखकर अति प्रसन्न हुए।

जीव की यह अपनी ही योग्यता है कि कोई तो शास्त्रज्ञान पाकर परम उत्कृष्टता को पाते हैं और कोई उस ज्ञान का मद करके अंधे हो जाते हैं।

भामण्डल और सीता की उत्पत्ति – यहाँ राजा जनक की भार्या विदेहा गर्भवती हुई। समय आने पर रानी विदेहा के पुत्र

(भामण्डल) एवं पुत्री (सीता) एक साथ जुड़वा भाई-बहिन उत्पन्न हुए।

पूर्वभव के बैरी महाकाल असुरदेव ने अवधिज्ञान से इसे (भामण्डल) अपनी पूर्वभव की पत्नि चित्तोत्सवा (सीता का जीव) का हरण करने वाला जानकर उसी समय उस (भामण्डल) का अपहरण कर लिया। पहले तो उस देव ने क्रोध में यह सोचा कि मैं इसे शिला पर पटक कर मार डालूँ; परन्तु बाद में ऐसा विचार किया कि धिक्कार है मुझे, जो मैंने ऐसा अनंत संसार के कारणभूत पाप का चिंतवन किया। पूर्वभव में मैंने मुनिव्रत धारण कर तृण-मात्र की भी विराधना नहीं की थी और उसी के प्रताप से आज मैं ऐसी विभूति को प्राप्त हुआ हूँ, अब मैं ऐसा खोटा पाप कैसे कर सकता हूँ?

ऐसा विचार कर उस देव ने दया करके बालक को कानों में प्रकाशमान कुण्डल पहनाये और उसके बाद उसे पर्णलघ्वी विद्या के द्वारा धीरे-धीरे आकाश से उतारकर, स्वयं अपने स्थान को चला गया।

उसी समय रात्रि में चन्द्रगति नामक विद्याधर राजा ने अपने उद्यान में इस बालक को आकाश से गिरते हुए देखा, तो सोचने लगा कि यह कोई नक्षत्र गिरा है अथवा कोई विद्युतपात हुआ है। ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ने ज्यों ही आकाश में उड़कर उसे अपने हाथों में ग्रहण किया, त्यों ही उसे पता चला कि – अहो ! यह तो नवजात बालक है। वह उस बालक को बड़े ही हर्ष से लेकर वापिस अपने शयनकक्ष में पहुँच गया। विद्याधर ने बालक को सोती हुई अपनी पत्नी पुष्पवती की जाँघों के बीच रख दिया। फिर वह ऊँची आवाज में बोला – हे रानी ! उठो ! तुम्हारे महासुन्दर बालक हुआ है।

रानी पुष्पवती ने जागकर पूछा – हे नाथ ! यह अद्भुत बालक किस पुण्यवती स्त्री ने उत्पन्न किया है? राजा बोला – हे प्रिये ! तुमने

ही पैदा किया है, तुम्हारे समान पुण्यवती अन्य कौन है? धन्य है तेरे भाग्य कि तूने ऐसे पुत्र का प्रसव किया। रानी बोली – हे देव ! मैं तो बाँझ हूँ। मेरे पुत्र कैसे हो सकता है? राजा बोला – हे देवी ! तुम शंका मत करो। स्त्रियों के गुप्तगर्भ भी हुआ करता है।

रानी ने कहा – ठीक है, ऐसा ही हो; परन्तु यह तो बताइये कि इसके ये देवोपुनीत मनोहर कुण्डल कहाँ से आये? ऐसे कुण्डल तो पृथ्वी पर कहीं नहीं है।

राजा बोला – हे रानी ! ऐसा विचार करने से क्या लाभ है ? सत्य बात तो यह है कि यह बालक आकाश से गिरा है, मैंने इसे झेलकर फिर तुझे दिया है। इसके लक्षणों से ज्ञात होता है कि यह कोई बड़े कुल का पुत्र है, तुम इसे लो और प्रसूतिगृह में प्रवेश करो। रानी पति की आज्ञानुसार प्रसूतिगृह में चली गयी।

प्रातःकाल होने पर राजा ने पुत्र का जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम प्रभामण्डल रखा। फिर उसे पालन-पोषण हेतु धाय को सौंप दिया।

उधर मिथिलापुरी में राजा जनक की रानी विदेहा अपने पुत्र का हरण जानकर इसप्रकार विलाप करने लगी कि – मैंने भी पूर्वभव में किसी के बालक का वियोग किया होगा। अतः मुझे ऐसा फल मिला है, इसलिये मुझे चाहिये कि मैं भविष्य में कभी कोई अशुभ कर्म न करूँ। सच है, अशुभ कर्म ही दुःख का बीज है। राजा जनक ने भी रानी को धैर्य बँधाया – हे प्रिये ! तुम शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित है, उसे किसी ने हर लिया है। तुम अवश्य ही उसे पाओगी। राजा दशरथ मेरे परममित्र हैं, मैं यह समाचार उन्हें लिखकर भेज रहा हूँ। वे अपने पुत्र को खोज लाएँगे।

रानी से ऐसा कहने के बाद राजा जनक ने राजा दशरथ के पास पत्र भेजा। पत्र पढ़कर राजा दशरथ अति दुःखी हुए। राजा दशरथ एवं राजा जनक दोनों ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर बालक को ढूँढ़ा, पर वह कहीं नहीं मिला। उस समय कुटुम्बीजनों में अपहृत बालक का शोक भुलाने का कारण यदि कुछ था, तो वह थी पुत्री जानकी की अत्यंत मनोहर और शुभ बालचेष्टाएँ। जानकी का नाम सीता रखा गया; क्योंकि वह सीता अर्थात् भूमि के समान क्षमा को धारण करने वाली थी।

सीता के विवाह का निश्चय – पश्चात् जानकी को युवा एवं रूप-गुणों से युक्त देखकर राजा जनक ने विचार किया कि जिसप्रकार रति कामदेव के ही योग्य है; उसी प्रकार यह कन्या राजा दशरथ के बड़े पुत्र राम के ही योग्य है।

राजा जनक के इस निर्णय को सुनकर राम से अत्यधिक स्नेह रखने वाले नारद को सीता का रूप देखने की तीव्र इच्छा हुई और वे शीघ्र ही राजा जनक के घर पहुँच गये।

सीता उस समय दर्पण में अपना मुख देख रही थी कि उसे दर्पण में नारद की जटा दिखाई दी, जिससे डरकर, वह "हाय माता ! यह कौन है?" ऐसा कहती हुई काँपती हुई महल के भीतर चली गयी। नारद भी पीछे-पीछे महल में जाने लगे तो, द्वार की रक्षक स्त्रियों ने उन्हें रोक दिया। नारद और उन स्त्रियों में झगड़ा हो गया। झगड़े की आवाज सुनकर अनेक शस्त्रधारी पुरुष सैनिक दौड़कर वहाँ आ गये और पुकारने लगे 'पकड़ो-पकड़ो, न जाने यह कौन है !" नारद डरकर आकाशमार्ग से कैलाश पर्वत चले गये।

वहाँ जाकर उन्होंने विचार किया कि देखो कन्या की दुष्टता ! मैं अदुष्टचित्त एवं सरल स्वभावी उसे मात्र राम के अनुराग से देखने के लिये गया था; परन्तु उसने मेरी ऐसी दशा करा दी। अब वह पापिनी

मुझसे बचकर कहाँ जायेगी? जहाँ भी जायेगी, मैं उसे वहीं कष्ट में डालूँगा।

ऐसा विचारकर नारद शीघ्र ही विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथनूपुर नगर में गये। वे अपने साथ सीता का एक बहुत सुन्दर एवं सजीव लगने वाला चित्रपट भी बनाकर ले गये। रथनूपुर में चन्द्रगति का पुत्र भामण्डल अनेक कुमारों के साथ एक उपवन में क्रीड़ा कर रहा था। नारद ने सीता का चित्रपट उसके पास डाल दिया और स्वयं पास में ही कहीं छिप गये। भामण्डल को यह ज्ञान तो था नहीं कि यह मेरी ही बहन का चित्रपट है। अतः वह उस पर मोहित हो गया। जब नारद ने देख लिया कि भामण्डल अतिव्याकुल हो रहा है, तब वे सामने आये। कुमार के बंधु-बाँधवों ने उनसे पूछा कि हे देव ! यह किसकी कन्या का चित्र है?

नारद बोले कि मिथिलानगरी में राजा इन्द्रकेतु का पुत्र जनक नाम का राजा रहता है। उसकी मनोहारिणी रानी विदेहा है यह उन दोनों की पुत्री सीता का चित्र है। फिर उन्होंने भामण्डल से कहा कि हे कुमार! तू दुःखी मत हो। तू विद्याधर राजा का पुत्र है। तुझे यह कन्या दुर्लभ नहीं है, सुलभ ही है – ऐसा कहकर नारद वहाँ से चला गया।

उस चित्रपट को देखकर भामण्डल का मन अत्यन्त विह्वल हो उठा और वह किसी भी कार्य में अपने चित्त को लगाने में असमर्थ हो गया। जब उसकी व्याकुलता के सारे समाचार पिता चन्द्रगति ने सुने तो वह अतिदुखी हुआ। उसने अपनी स्त्री सहित आकर पुत्र से कहा – हे पुत्र ! तू स्थिरचित्त हो और और भोजनादि सर्व क्रियाएँ पूर्ववत् कर। जो कन्या तेरे मन में बसी है, मैं शीघ्र ही उसके साथ तेरा विवाह कराऊँगा।

राजा जनक और चन्द्रगति मिलन – तदनन्तर चन्द्रगति ने अपने एक चतुर सेवक चपलवेग नामक विद्याधर को बुलाया और किसी भी प्रकार राजा जनक को रथनूपुर लाने का आदेश दिया। वह कुछ ही समय में राजा जनक को रथनूपुर लाने में सफल हो गया और उन्हें जिनमन्दिर के निकट छोड़कर, चन्द्रगति के पास जाकर उन्हें यह समाचार बता दिया कि – मैं राजा जनक को ले आया हूँ, वे इस समय जिनेन्द्र भगवान के चैत्यालय में हैं।

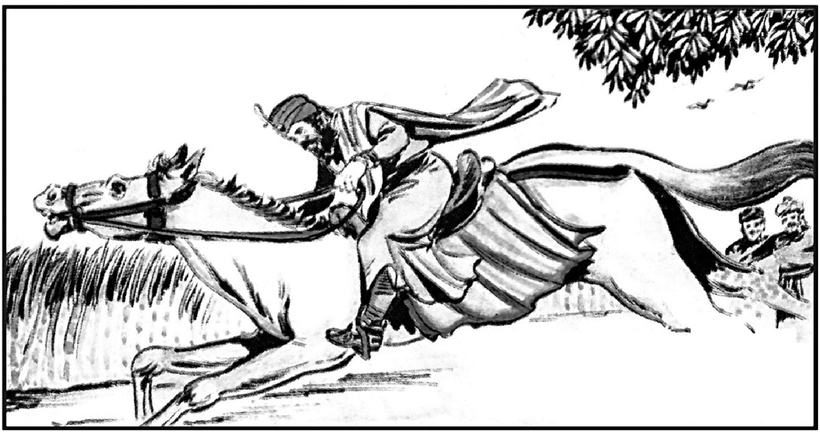

राजा चन्द्रगति अपने कुछ निकटवर्ती लोगों को साथ लेकर चैत्यालय पहुँचे। जब राजा जनक जिनराज की स्तुति करके चैत्यालय से बाहर आये तो राजा चन्द्रगति ने उनसे पूछा कि आप कौन हैं?

राजा जनक ने बताया – मैं मिथिलानगरी से आया हूँ, मेरा नाम जनक है, मुझे एक मायामयी घोड़ा यहाँ ले आया है। दोनों राजा एक-दूसरे से मिलकर अतिप्रसन्न हुए तथा एक-दूसरे के कुशल-समाचार की वार्ता करने लगे। तब चन्द्रगति ने राजा जनक से कहा– हे महाराज ! मैं बहुत पुण्यवान हूँ कि मुझे मिथिलाधिपति के दर्शन हुये। आपकी पुत्री बहुत शुभ लक्षणों से युक्त है, आप उसे मेरे पुत्र

भामण्डल को प्रदान करें। मैं आपसे सम्बन्ध जोड़कर अपना परम सौभाग्य समझूँगा।

इस पर राजा जनक ने कहा – हे विद्याधराधिपति ! आपने जो कहा, वह सब उचित है; परन्तु मैंने अपनी पुत्री राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र को देने का निर्णय कर रखा है। चन्द्रगति ने पूछा– ऐसा निर्णय आपने किसलिये लिया है? राजा जनक ने बताया कि एक बार मेरी मिथिलापुरी को म्लेच्छों ने घेर लिया था और उनसे हमारा घोर युद्ध हुआ था। उस समय यदि श्री रामचन्द्र और उनके छोटे भाई लक्ष्मण ने आकर म्लेच्छों की सेना को नहीं जीता होता तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही म्लेच्छ हो जाती। इस प्रकार राम-लक्ष्मण ने मेरा परम उपकार किया था। तत्पश्चात् मुझे ऐसी चिंता हुई कि मैं इनका क्या प्रत्युपकार करूँ। तब मैंने अपनी नवयौवना पुत्री सीता को राम के लिये देने का निर्णय किया।

राजा जनक के समक्ष शर्त – राजा जनक की बात सुनकर विद्याधरों ने एकांत में बैठकर परस्पर विचार-विमर्श किया और तत्पश्चात् राजा जनक से कहा – हे भूमिगोचरियों के स्वामी ! तुम राम और लक्ष्मण का इतना प्रभाव कहते हो; लेकिन हमें उनके बल-पराक्रम का विश्वास नहीं है। अतः हमारी एक बात सुनो। ये दो धनुष हैं – वज्रावर्त्त एवं सागरावर्त्त। इन दोनों धनुषों की रक्षा देव करते हैं। यदि वे दोनों भाई इन दोनों धनुषों की प्रत्यंचा चढ़ा दें, तो हमें उनकी शक्ति का भरोसा हो जाये। अधिक क्या कहें, यह सुन लो कि यदि वज्रावर्त्त धनुष को राम चढ़ा दें तो तुम उनके साथ अपनी कन्या का विवाह कर देना, अन्यथा उस कन्या को हम जबर्दस्ती यहाँ ले आयेंगे। जनक ने कहा – यह बात मुझे स्वीकार है।

तदनन्तर कुछ विद्याधर उन धनुषों और जनक को साथ लेकर

मिथिलापुरी आ गये और चन्द्रगति विद्याधर अपने महल में लौट आये। राजा जनक ने मिथिलापुरी आकर सारे समाचार अपनी रानी विदेहा से कहे और अपनी यह चिंता भी प्रकट की कि वज्रावर्त्त धनुष, जिसकी ज्वाला दशों दिशाओं में फैल रही है, उसको तो इन्द्र भी नहीं चढ़ा सकता। अब क्या करें? यदि कदाचित् रामचन्द्रजी इस धनुष को नहीं चढ़ा सके तो, ये विद्याधर मेरी पुत्री को बलपूर्वक ले जायेंगे।

राजा जनक की बात सुनकर रानी विदेहा रोने लगी और उसने राजा से कहा – हे देव ! मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है कि पहले तो मेरे पुत्र का हरण हो गया और अब यह पुत्री भी...।

शोक-सागर में निमग्न रानी को धैर्य बँधाते हुए राजा जनक ने कहा – हे रानी ! रोने से क्या होता है? **संसाररूपी नाटक का निर्देशक यह कर्म ही वस्तुतः समस्त प्राणियों को नाच नचाता है।** जीव ने पूर्व में जो कर्म उपार्जित किये हैं, वे उदयानुसार फलीभूत होते हैं।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यद्यपि नारद ने तो सीता को संकट में डालने के लिए ही यह प्रपंच रचा था, परन्तु उससे क्या ? **होगा तो वही, जो होने योग्य है** अर्थात् सीता को खोया हुआ भाई मिल जायेगा, जिसका विवरण हम आगे पढ़ेंगे।

अतः हमें कभी भी किसी का बुरा करने की तो सोचना ही नहीं चाहिए, वास्तव में तो हमें यह विचार कर सदा समताभाव से अपने स्वरूप में ही रहना चाहिए, **क्योंकि सभी को अपनी-अपनी योग्यता से अपने-अपने परिणामों का फल मिलता ही है।** फिर भी किसी के बारे में सोचना ही हो, तो उसके भले करने की ही सोचना चाहिए।

राम और सीता का विवाह – इसके बाद राजा जनक ने नगर से बाहर जाकर धनुषशाला के पास स्वयंवर मंडप बनवाया तथा सभी

राजपुत्रों को बुलाने के लिये पत्र भेज दिये। पत्र पढ़कर सभी राजपुत्र आ गये। अयोध्या भी दूत भेजा गया, अतः माता-पिता सहित राम आदि चारों भाई भी आ पहुँचे। राजा जनक ने उन सबका बहुत आदर-सत्कार किया।

स्वयंवर मण्डप में इक्ष्वाकुवंशी, सोमवंशी, नागवंशी, हरिवंशी और कुरुवंशी अनेक राजकुमार शामिल हुए।

राजा जनक ने सभी राजकुमारों को एक-एक करके धनुष की ओर भेजा; किन्तु ज्वाला छोड़ने वाले उस वज्रावर्त्त धनुष को देखकर सभी नतमस्तक हो गये।

तत्पश्चात् श्री राम धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिये मदोन्मत्त हाथी की तरह उठकर तैयार हुए। धनुष के पास पहुँचते ही उनके पुण्य के प्रभाव से वह धनुष ज्वाला रहित हो गया, मानो गुरु के निकट शिष्य सरल हो गया हो। रामचन्द्र ने धनुष हाथ में लेकर प्रत्यन्चा चढ़ाकर खींचा तो ऐसा महाप्रचण्ड शब्द हुआ कि सारी पृथ्वी कंपायमान हो गयी। आकाश से पुष्पों की वर्षा करते हुए कितने ही देव नृत्य करने लगे। धनुष की आवाज से लोगों को डरा हुआ देखकर दयालु रामचन्द्र ने धनुष को वापस स्थापित कर दिया। **सीता ने श्री राम के गले में रत्ननिर्मित माला डालकर उनका वरण किया। तदनन्तर जिस प्रकार जिनधर्मी के पास दया रहती है; उसी प्रकार श्री रामचन्द्र के पास सीता आकर बैठ गयीं।**

दूसरे सागरावर्त्त धनुष को लक्ष्मण ने चढ़ाकर खींच दिया और लक्ष्मण महाविनय युक्त होकर राम के पास उसी प्रकार बैठ गये, **जिस प्रकार ज्ञान के पास वैराग्य आता है।**

लक्ष्मण का ऐसा पराक्रम देखकर चन्द्रगति द्वारा भेजे गये चन्द्रवर्धन विद्याधर ने अति प्रसन्न होकर अपनी अठारह बुद्धिमती पुत्रियाँ लक्ष्मण को प्रदान करने की घोषणा की।

तदनन्तर जितने भी विद्याधर वहाँ आये थे, उन्होंने रथनूपुर वापस जाकर राम-लक्ष्मण के प्रताप सहित समाचार विद्याधर राजा चन्द्रगति को सुनाया तो वह चिन्ता में निमग्न हो गया।

इधर स्वयंवर मण्डप में राम के भाई भरत भी आये थे। वे यह देखकर उदास हो गये। तब भरत की माता केकयी ने भरत के मन का अभिप्राय समझकर दशरथ से कान में कहा – हे नाथ ! भरत का मन कुछ उदास दिखायी देता है। अतः आप कोई ऐसा उपाय कीजिये कि यह विरक्त न हो। राजा जनक के भाई कनक की पुत्री

लोकसुन्दरी बहुत सुन्दर है। अतः आप पुनः स्वयंवर की विधि कराइये तथा ऐसा उपाय कीजिये कि वह भरत के कंठ में वरमाला डाले, ताकि भरत प्रसन्न हो जाए।

दशरथ ने केकयी की बात को गंभीरता से लेते हुए स्वीकार कर ली और शीघ्र ही राजा कनक के पास इसके समाचार भेज दिये। कनक ने भी राजा दशरथ की आज्ञा स्वीकार कर ली और जो राजा लौट गये थे, उन्हें वापस बुला लिया। तदनन्तर स्वयंवर में कनक की पुत्री लोकसुन्दरी ने भरत के गले में वरमाला डाल दी।

तत्पश्चात् मिथिलापुरी में सीता और लोकसुन्दरी के विवाह का बहुत उत्सव हुआ। राजा दशरथ पुत्रों एवं पुत्रवधुओं के साथ बड़े उत्साहपूर्वक अयोध्या वापस आ गये।

ऐसे सभी अनुकूल संयोगों को शुभ कर्मों का फल जानकर विवेकीजनों को अशुभ से बचकर शुभ कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिये। पुनश्च, शुभ को भी कर्मबन्ध का कारण जानकर शुद्धोपयोगी होने का उपाय करना चाहिये।

चन्द्रगति विद्याधर को वैराग्य – इधर सीता-राम के विवाह के समाचार पाकर चन्द्रगति विद्याधर का परिणाम तो शान्त हो गया, परन्तु भामण्डल को यह बात स्वीकार्य नहीं हुई और वह अपने मित्र तथा कुछ सेना आदि को लेकर राम से युद्ध कर सीता के अपहरण की भावना से अयोध्या की ओर रवाना हो गया।

मार्ग में जाते हुए जब उसकी दृष्टि अपने पूर्वभव के नगर विदग्धपुर पर पड़ी, तो उसे भवस्मरण हो गया, उसने पूर्व और वर्तमान दो भव देखे, उसने देखा कि मैं पूर्वभव में तो इस नगर का राजा था और जिस देव ने मेरा इसभव में हरण किया था, उसकी पत्नि चित्तोसवा का मैंने पूर्वभव में हरण किया था और चित्तोसवा का जीव इसभव

में मेरी बहिन सीता हुई है – यह जानकर वह मूर्छित हो गया।

होश आया तो लज्जा और शोक के मारे उसने अपना मुँह नीचे कर लिया और कहने लगा – ''धिक्कार है मुझे ! मैंने महामोह के वशीभूत होकर इतनी विरुद्ध बात सोची। ऐसा खोटा विचार तो अत्यन्त नीच कुल के लोगों को भी नहीं आता। अब मैंने वास्तविकता जान ली है कि 'मैं और सीता' एक ही माता के उदर से उत्पन्न हुए भाई-बहिन हैं।'' देखो ! संसार की विचित्रता कि जिसका पूर्वभव में भोग की वासना से हरण किया था, वही अगले भव में बहिन बन गई। आचार्य तो यहाँ तक कहते हैं कि कौन जाने पत्नि मरकर माता बन जाये, माता मरकर पत्नि बन जाये, **अतः वास्तव में भोग का भाव सर्वथा त्याज्य है।**

यह सब जानकर भामण्डल अपने रथनूपुर नगर को वापस चला गया और यह घटना अपने पिता को बताते हुए अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। चन्द्रगति विद्याधर तो यह सब सुनकर संसार से विरक्त हो सर्वभूतहित महामुनि के पास दिगम्बरी दीक्षा लेने हेतु अयोध्या के महेन्द्रोदय वन की ओर रवाना हो गये, साथ ही भामण्डल आदि अनेक अन्य विद्याधर भी आये। इस मंगल अवसर पर भामण्डल ने खूब प्रभावना की और मार्ग में सबने चन्द्रगति के भावों की अनुमोदना तो की ही, साथ ही अपने नये राजा भामण्डल की जयकारा से भी आकाश गुंजायमान कर दिया। उन्होंने कुछ ऐसे जयकारे भी लगाये कि **'राजा जनक का पुत्र जयवंत हो', 'राजा जनक का पुत्र जयवंत हो'** जब यह जनमेदनी के स्वर सीता के कर्णपुट से टकराये, तो वह सोचने लगी कि बार-बार यह कैसी आवाज आ रही है कि **'राजा जनक का पुत्र जयवंत हो'** मेरा भाई, जो उत्पन्न होते ही हर लिया गया था, कहीं यह वही तो नहीं है?

प्रात:काल राजा दशरथ, राम, सीता आदि सभी सर्वभूतहित महामुनि के दर्शन हेतु महेन्द्रोदय वन में पहुँचे। **जहाँ चन्द्रगति के दीक्षा–महोत्सव** के साथ सीता का अपने भाई भामण्डल से पहली बार मिलन हुआ। पश्चात् दशरथ ने सीता के माता-पिता को शीघ्रगामी विमान से अयोध्या बुलवा लिया। भामण्डल अपने माता-पिता से मिलकर अति प्रसन्न हुआ और सर्व सम्मति पूर्वक मिथिलापुरी का राज्य चाचा कनक राजा को सौंपकर अपने पिता जनक व माता विदेहा को साथ लेकर अपने स्थान रथनूपुर नगर चला गया।

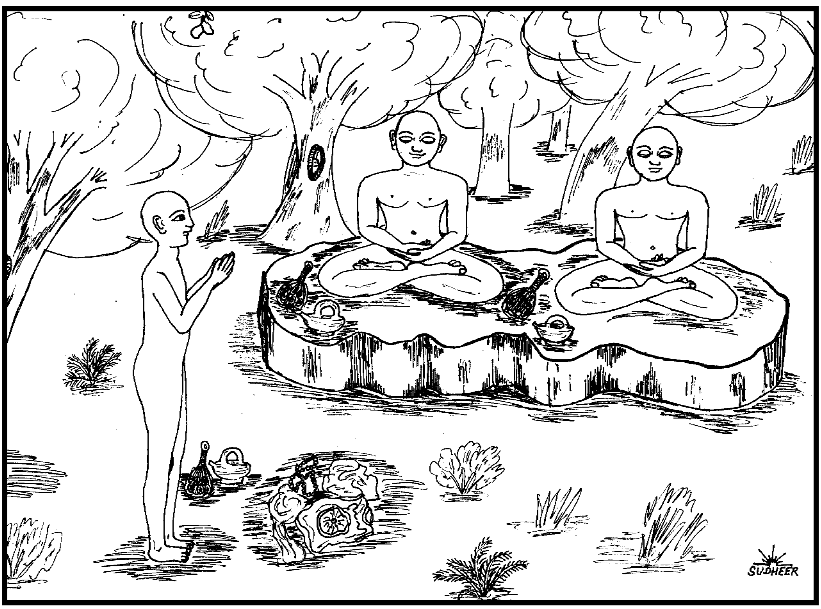

राजा दशरथ को वैराग्य – राजा दशरथ को सर्वभूतहित महामुनि का उपदेश बारम्बार याद आने लगा, वे सोचने लगे कि –

''जो जीव अपने स्वभाव को छोड़कर समस्त पर पदार्थों में यह मानते हैं कि 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है', वे जीव केवल अधर्म को ही पकड़ने वाले हैं। 'पर' में अहंबुद्धि होना मोक्षमार्ग में सबसे बड़ी बाधा

है।'' अतः आज उन्होंने यह निश्चय किया कि वे ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्यभार सोंप कर शीघ्र ही वनगमन करेंगे अर्थात् जैनेश्वरी दीक्षा धारण करेंगे।

अतः उन्होंने राम को अपने पास आने हेतु समाचार भेज दिया। अंत:पुर में ये बात सुनते ही सभी को राजा दशरथ के वियोग का दुख सताने लगा; परन्तु पुत्र भरत तो यह सुनकर खुश हुआ और उसे ऐसे विचार आने लगे कि पिताजी के सिर पर तो राज्य का भार है, इसलिए उन्हें राज्य का प्रबंध करना पड़ रहा है, परन्तु मैं तो निर्भार हूँ, अतः मैं भी पिताजी के साथ ही दीक्षा लेकर संयम धारण करूँगा।

भरत के इस विचार को विचक्षण बुद्धि भरत की माता केकयी को समझते देर न लगी और वे पति और पुत्र के एकसाथ वियोग की कल्पना मात्र से आन्दोलित हो गईं और उनने कुछ भी पूर्वापर विचार किये बिना वरदानस्वरूप भरत को रोकने हेतु राजा दशरथ से भरत को राज्य देने की बात कह डाली। राजा दशरथ ने भी उन्हें इस बात के लिए 'हाँ' कह दी।

दशरथ और केकयी ये बात कर ही रही थी कि वैरागी भरत अपने मन की बात बताने हेतु वहाँ पहुँचे ही थे कि राजा दशरथ ने उन्हें राज्य संभालने की आज्ञा दे दी, साथ में केकयी ने भी इस बात का समर्थन कर दिया।

तभी रामचन्द्रजी भी वहाँ आ गये और भरत को समझाते हुए कहने लगे – ''पिता के वचनों का उल्लंघन होने से कुल की अपकीर्ति होगी और माता केकयी भी तुम्हारे विरह से महादु:खी होवेंगीं। इसलिए पुत्र का कर्त्तव्य है कि माता-पिता को दु:खी नहीं होने देना चाहिये। अभी तुम्हारी उम्र भी क्या है, थोड़े समय तुम राज्य संभाल लो, फिर हम साथ में ही दीक्षा लेंगे। तथा 'बड़े भाई के हाजिर होते हुए छोटे भाई को राज्य

सौंपा' – ऐसा भी जगत न कहे, इसलिए मैं तो सुदूर वन प्रदेश में या दक्षिण के किसी दूर क्षेत्र में जाकर रहूँगा। तुम निश्चिंत होकर राज्य संभालना।'' भरत यह सब सुनकर और अपनी कमजोरी को जानते हुए किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े रह गये।

राम का वन-प्रवास – इसप्रकार श्री राम ने भी भरत का हाथ पकड़ कर पिता की आज्ञा मानने का वास्ता देकर उन्हें राज्य करने पर विवश कर दिया और स्वयं माता-पिता को वंदन करके अयोध्या छोड़कर वन-प्रवास के लिए निकल पड़े। सीता और लक्ष्मण भी राम के साथ में ही चल पड़े। दशरथ को मूर्छा आ गई। नगरजनों तथा चारों माताओं ने राम को वन जाने से बहुत रोका, परन्तु राम नहीं रुके। राम, सीता एवं लक्ष्मण अयोध्या छोड़कर सुदूर वनप्रदेश में चले गये।

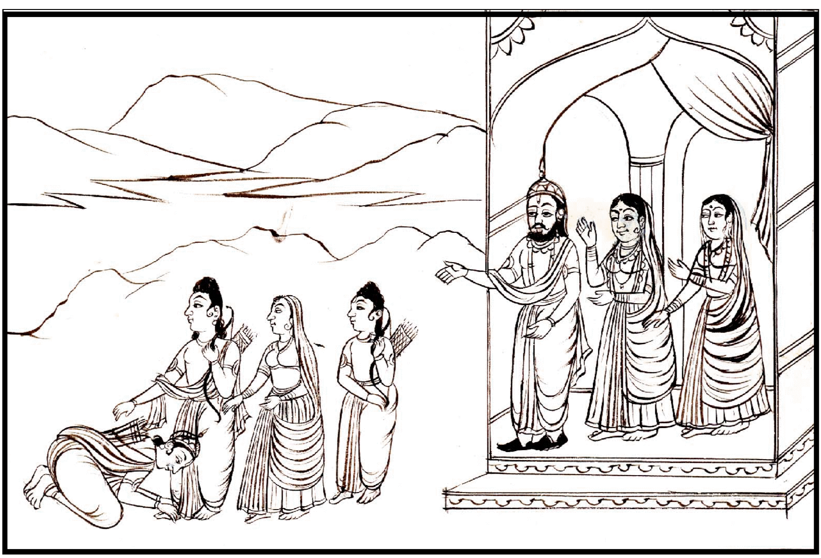

यह देखकर प्रजाजन तथा अनेक राजा शोकमग्न हो गये।

माता केकयी को अपने इस कृत्य पर बहुत खेद हुआ, वे पश्चाताप करते हुए विचार करने लगीं कि – ''अरेरे ! मैने यह पुत्रमोह

में कितना बड़ा पाप कर दिया, मैंने यह क्यों नहीं सोचा कि ज्येष्ठ पुत्र राम के होते हुए भरत को राज्य कैसे दिया जा सकता है। अरे, भरत दीक्षा ले भी लेता तो आत्मसाधना करके मुक्ति का वरण करता। मैंने उसे भी संसार में उलझाया और मात्र प्रिय राम के लिए ही नहीं, बल्कि कोमलांगी सीता एवं लक्ष्मण को भी अयोध्या छोड़ने का भयानक प्रसंग उत्पन्न कर दिया।

खैर, अब पछताने से क्या होगा। वास्तव में पर्यायदृष्टि ही खोटी है – '**पज्जयमूढ़ा हि परसमया।**' इत्यादि अनेक प्रकार से वे बहुत समय तक खेद-खिन्न होती रहीं और तत्त्वज्ञान के बल से संभलती रहीं।

अत: इस घटना से हमें इतनी शिक्षा तो ले ही लेनी चाहिए कि "**किसी भी बात या कार्य को करने से पूर्व उसके फल का विचार अवश्य कर लेना चाहिए।**"

पुत्रवत्सला माताओं को जब यह पता चला कि राम-लक्ष्मण और सीता अभी श्री अरनाथ जिनेन्द्र के मन्दिर के परिसर में ही रुके हैं, तब वे तत्काल राजा दशरथ से जाकर कहने लगीं – हे देव ! राम-लक्ष्मण को वापस लेने हेतु चलो।

दशरथ बोले – यह जगत स्वयं परिणमनशील है, मेरे आधीन नहीं है। मेरी इच्छा तो यही है कि सर्वजीवों को सुख हो, किसी को दुःख न हो; परन्तु इस संसार में हमारी इच्छा के आधीन कुछ भी नहीं है। **यह जीव नाना प्रकार के कर्मों की स्थितियों के अनुसार ही परिणमन करता है। अतः विवेकी पुरुष शोक नहीं करते।**

मैंने राज्याधिकार का त्याग कर दिया है। अब मैं पाप क्रियाओं से छूट गया हूँ। भव-भ्रमण से मुझे बहुत भय लगने लगा है। अतः अब तो मैं मुनिव्रत धारण करूँगा।

फिर भी माताओं ने उन्हें वापस लाने हेतु उनके पास सुबह जाने का निर्णय किया, परन्तु माली द्वारा प्रातः यह समाचार मिल गये कि राम-लक्ष्मण और सीता तो अर्द्धरात्रि के समय ही, जब पूरा नगर गहरी निद्रा में सो रहा था, तभी जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके, कवच पहनकर, धनुष-बाण लेकर, सीता को अपने बीच में करके चले गये।

उधर राजा दशरथ ने भरत का राज्याभिषेक किया और राम के वियोग के कारण कुछ व्याकुल चित्त को समता-भाव से शान्त कर वे विचारने लगे – "**दुःख का मूल राग-द्वेष है और इसका कारण शरीर में अपनेपन का भाव है, जो अपने आत्मस्वभाव को नहीं जानने के कारण ही है।**" – इसप्रकार विचारते हुए वे सर्वभूतहित स्वामी के पास जाकर अन्य अनेक राजाओं के साथ दीक्षा लेकर मुनि हो गये। अब दशरथ मुनिराज अपने गुरू से आज्ञा लेकर एकलविहारी होकर विचरते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पधारे।

अहो, मुनि बनने की भावना वाले भरत परमविरक्तचित्त से अयोध्या का राज्य संभालने लगे, मानो दूसरा भरत चक्रवर्ती ही हो ! और 'भरतजी घर में वैरागी' – इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए अन्दर से उदास होने पर भी प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगे।

अहो ! जो राजकुमार भरत निश्चिंत होकर पिता से भी पहले संसार छोड़कर मुनि बनने के लिए महल के बाहर निकलने की तैयारी में हों, उन्हें फिर से राज्य का भार संभालना पड़े; उनकी अन्तरंग दशा कैसी होगी ? एक ओर राग से सर्वथा अलिप्त ज्ञानचेतना का राज्य और दूसरी ओर लौकिक महान राज्य का कार्य भार ! कैसी विचित्रदशा है गृहस्थ ज्ञानी की ! **एक ओर ज्ञानचेतना मोक्षोन्मुख परिणम रही है और दूसरी ओर संसार का रागभाव भी काम कर रहा है। वाह रे वाह ! ज्ञानी की आश्चर्यकारी दशा !** भेदज्ञान के बिना ये बात इस अज्ञानी

जगत को आसानी से समझ में आ जाये – ऐसा नहीं है।

इन सबके बीच धर्मात्मा अपने चैतन्यतत्त्व को कभी भी चूकते नहीं, भूलते नहीं। देखो तो जरा महापुरुषों के जीवन की विचित्रता ! चाहे जैसी प्रतिकूलताओं के बीच भी धर्मात्मा अपने चैतन्यतत्त्व को कभी भी नहीं चूकते अर्थात् उनकी साधना निरन्तर चालू रहती है। यही उनके अन्तरंग जीवन की खूबी है, इसमें ही आराधना का रहस्य छुपा हुआ है। अस्तु !

यद्यपि भरत के राज्य में प्रजा सर्व प्रकार से सुखी थी, तथापि उसे अच्छा नहीं लगता था और लगे भी कैसे ? जब राजा भरत को स्वयं ही अच्छा नहीं लगता था।

राम का वन-प्रवास

इधर राजा भरत अयोध्या का राज करते हुए भी निरन्तर वैराग्य का पोषण कर रहे हैं। उधर दण्डक वन में राम, लक्ष्मण और सीता के समाचार जानने हेतु हम सभी अब दण्डक वन-प्रदेश में चलते हैं।

पुण्य का प्रभाव – राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या के बाहर भी आनंदपूर्वक विहार करते हैं। जहाँ जाते हैं, वहाँ पुण्य के प्रभाव से उनका सभी सन्मान करते हैं। उनका अद्‌भुत् रूप देखकर सभी प्रसन्न होते हैं। राम-लक्ष्मण का साथ होने के कारण चाहे जितने भयंकर वन में भी भयभीरू कोमलांगी सीता को डर नहीं लगता। वे सभी नये-नये तीर्थों के दर्शन कर आनन्दित होते हैं। वीतरागी मुनिवरों के दर्शन होते ही भक्ति करते हैं, धर्मोपदेश सुनते हैं, आपस में धर्म चर्चा भी करते हैं। अहा, अयोध्या के राजपुत्र आज मुनियों की तरह वन में विचरण कर रहे हैं। वहाँ उन्हें अच्छे-बुरे अनेक प्रसंग देखने मिलते हैं, जिनका वे अपने बुद्धि, बल एवं विवेक से निराकरण करते हैं।

उनके इस वन-प्रवास में अनेकों घटनायें घटित होती हैं, जिनमें से कुछ मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत है –

राजा वज्रकरण का भय निवारण – मालव देश के दशांग नगर के राजा वज्रकरण ने ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि ''जिनदेव, जिनमुनि और जिनवाणी के अतिरिक्त मैं किसी को भी नमस्कार नहीं करूँगा।''

उज्जैन-पति सिंहोदर राजा उसे अन्यत्र नमाने के लिए उसके ऊपर घेरा डालकर नगर को उजाड़ रहा था, तब जिनधर्म के प्रति परम वात्सल्यधारी राम-लक्ष्मण ने सिंहोदर राजा को जीतकर वज्रकरण की रक्षा की और अपना साधर्मी प्रेम दर्शाया तथा उन दोनों राजाओं को एक दूसरे का मित्र बना दिया, इसप्रकार वे देशाटन करते हुए बीच में अनेक राजाओं का निग्रह करके सज्जनों का उपकार करते हैं, मुनिवरों या धर्मात्माओं के ऊपर हो रहे उपसर्ग को दूर करते हैं। अद्‌भुत पुण्य-प्रताप से उन्हें सर्वत्र सफलता मिलती है। **महापुरुष महल में हों या वन में, परन्तु उनका पुण्य-प्रताप छिपा नहीं रहता।**

बाल्यखिल्य को म्लेच्छों की कैद से छुड़ाना – एक दिन वन भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण को पुरुष वेश में रह रही राजा बाल्यखिल्य की पुत्री से पता चला कि राजा बाल्यखिल्य म्लेच्छों की कैद में हैं।

तब राम, लक्ष्मण एवं सीता उसके पास तीन दिन तक रहे और फिर रात्रि में वहाँ से निकलकर चुपचाप चले गये और म्लेच्छों की सेना को खेल-खेल में ही परास्त कर दिया, जिससे म्लेच्छों का राजा भयभीत होकर राम की शरण में आकर बोला – हे नाथ ! मुझे क्या आज्ञा है?

रामचन्द्र दयायुक्त होकर कहने लगे – उठो-उठो ! डरो मत। बाल्यखिल्य को छोड़ दो। उसने कहा – हे प्रभो ! जैसी आपकी आज्ञा!

वह बाल्यखिल्य को शीघ्र ही ले आया। बाल्यखिल्य राम-लक्ष्मण को देखकर अति प्रसन्न हुआ। उसने रथ से उतरकर उन्हें नमस्कार करके कहा – हे प्रभो ! मेरे पुण्ययोग से आप यहाँ पधारे और मुझे बंधन से मुक्त कराया। अत: मैं आपका आभारी हूँ।

गुप्तरूप से भरत का सहयोग – आगे जाकर वैजयन्तपुर के राजा पृथ्वीधर की पुत्री वनमाला का लक्ष्मण के साथ विवाह हुआ। एक दिन वे राजा पृथ्वीधर जब राम-लक्ष्मण के साथ बैठकर मधुर वार्तालाप कर रहे थे। तभी उन्हें एक पत्र मिला।

पत्र में लिखा था कि ''मैं नन्द्यावर्तपुर का राजा अतिवीर्य अयोध्या के राजा भरत पर आक्रमण हेतु जा रहा हूँ और तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ; अतः पत्र मिलते ही तत्काल यहाँ चले आओ।''

पृथ्वीधर के कुछ कहने से पहले ही लक्ष्मण बोले – हे दूत! भरत और अतिवीर्य में विरोध किस कारण से हुआ है ?

दूत ने कहा – हमारे राजा अतिवीर्य ने भरत के पास संदेश भेजा था कि ''या तो हमारी सेवा करो या युद्ध के लिए तैयार रहो।'' अत: भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई भी अपनी सेना और सहायक राजाओं के साथ शत्रु पर चढ़ाई करने के लिये अयोध्या से निकल पड़े हैं।

राजा पृथ्वीधर ने दूत को विदा किया और राम को आश्वस्त कर अतिवीर्य के पास जाने को तैयार हुए, तब श्री राम ने उन्हें जाने से रोकते हुए कहा – ''हम आपके पुत्रों और दामाद लक्ष्मण को साथ लेकर अतिवीर्य के पास जाते हैं।''

वहाँ पहुँचकर सीता को तो उन्होंने आर्यिका संघ में छोड़ दिया और स्वयं नर्तकी का वेश धारण करके राजा अतिवीर्य के महल के

द्वार पर पहुँचकर नृत्य-गान आरम्भ कर दिया। नृत्य और संगीत के द्वारा पूरी तरह मोहित कर नर्तकी-रूपधारी राम ने अतिवीर्य से अत्यन्त क्रोधित होकर कहा – ''हे अतिवीर्य ! यदि तू शांतिपूर्वक जीवित रहना चाहता है, तो तेरी भलाई इसी में है कि भरत का दास बनकर उन्हें प्रसन्न रख।''

जब इसका प्रतिकार करने राजा अतिवीर्य ने ज्यों ही तलवार उठाई, त्यों ही उस नर्तकी ने उछलकर उससे तलवार छीन ली और उसे बन्दी बना लिया और घोषणा की कि ''अतिवीर्य के पक्षधर सभी चुपचाप भरत की शरण में चले जाओ।''

राजा अतिवीर्य को वैराग्य – अतिवीर्य प्रतिबोध को प्राप्त हुए, तब श्री राम से कहा – हे देव ! आपने बहुत अच्छा किया।

'अब मुझे राज्य की इच्छा नहीं रही।' – इसप्रकार कहते हुए अतिवीर्य ने राम-लक्ष्मण से क्षमा माँगते हुए, श्रुतधर मुनिराज से दिगम्बरी दीक्षा धारण करने की भावना प्रगट की।

अहो ! देखो तो सही ! **पुरुषार्थी जीवों का पराक्रम क्षणभर पहले राज्य के लिए लड़ रहे थे और क्षणभर बाद ही दीक्षा ले कर कर्मों से लड़ने हेतु निकल पड़े।**

'एवमस्तु' आचार्य के इसप्रकार कहते ही उन्होंने वस्त्र त्यागकर, केशलोंच कर, महाव्रत धारण किये और मुनिधर्म का पालन करने लगे। जिन्होंने समस्त परिग्रह की आशा का त्याग किया है, चारित्राचार को अंगीकार किया है और महाशील को धारण किया है, ऐसे श्रुतधर मुनिराज ने अतिवीर्य को सम्बोधित करते हुए कहा कि –

''हे भव्य ! द्रव्य-पर्यायात्मक आत्मतत्त्व का श्रद्धान किये बिना पर्यायदृष्टि का एकांत नहीं मिटता। द्रव्यदृष्टि के विषयभूत

वस्तु-तत्त्व का श्रद्धान करने से ही जीव की अनादिकालीन पर्यायमूढ़ता मिटती है। अतः हे अतिवीर्य ! अब तू द्रव्यदृष्टि के विषयभूत निज चैतन्य का ध्यान कर ! जिससे कि तेरी पर्याय की अशुद्धता मिटकर शुद्धता की प्राप्ति हो।''

भरत को यह समाचार मिलते ही भरत, अतिवीर्य मुनिराज के दर्शनार्थ गये। उन्होंने कहा – ''हे देव ! आप कृतार्थ हैं। आपने पूज्य पद प्राप्त किया है, आपको हमारा बारम्बार नमस्कार हो।''

लक्ष्मण का बल प्रदर्शन और जितपद्मा की प्राप्ति – इसके बाद राम-लक्ष्मण-सीता रात्रि के समय चुपचाप वैजयन्तपुर से निकल गये और अनेक देशों में विहार करते हुए क्षेमांजलि नगर पहुँचे। इस नगर के राजा की जितपद्मा नाम की पुत्री थी, उसको वही पा सकता था, जो राजा की चोट खाकर भी जीवित बच जाये।

महाकौतुकी लक्ष्मण बोले कि मैं राजा से मिलना चाहता हूँ। राजा ने पूछा कि तुम कौन हो और यहाँ किसलिये आये हो ? लक्ष्मण ने बताया कि मैं राजा भरत का सेवक हूँ और आपकी पुत्री का वृत्तान्त सुनकर यहाँ आया हूँ। तुम्हारी शक्ति देखना चाहता हूँ।

राजा बोला – तू मरना ही चाहता है तो झेल। ऐसा कहकर राजा ने अत्यंत क्रोधित होकर एक अत्यन्त तीक्ष्ण गदा चलाई, जिसे लक्ष्मण ने अपनी बाईं भुजा से रोक लिया। जब राजा ने दूसरी शक्ति चलाई तो उसे लक्ष्मण ने अपनी दाईं भुजा से पकड़ लिया। तीसरी और चौथी शक्तियों को अपनी बगलों में और पाँचवीं शक्ति को उसने दाँतों से पकड़ लिया। इसके बाद लक्ष्मण राजा से बोला कि यदि आपके पास और भी कोई शक्ति हो तो उसे भी चलाईये।

बस, फिर क्या था। जितपद्मा का लक्ष्मण के साथ विवाह हो

गया। वे कुछ दिन रहकर वनमाला की तरह जितपद्मा को भी समझाकर एक दिन अर्द्धरात्रि में चुपचाप उठकर वहाँ से चल दिये।

सत्य ही है विभूतियाँ तो सदा ही पुण्य की दास रही हैं, पर ज्ञानी कभी पुण्यजनित विभूतियों के दास नहीं होते।

मुनिवरों का उपसर्ग निवारण – अथानन्तर विहार करते हुए राम, लक्ष्मण और सीता वंशस्थद्युति नामक नगर के समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने नगर छोड़कर भागते हुए लोगों को देखा। फिर उन्हें पूछने पर पता चला कि कोई दुष्ट देव वंशधर पहाड़ पर रात्रि के समय भयंकर उत्पात करता है। उसी के भय से सभी प्रतिदिन सायंकाल के समय नगर छोड़कर भाग जाते हैं तथा प्रातःकाल के समय वापस लौट आते हैं।

यह सुनकर राम-लक्ष्मण और सीता उस दुर्गम पहाड़ के विशाल शिखर पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने देशभूषण तथा कुलभूषण नामक महामुनिराजों को खड्गासन मुद्रा में ध्यानस्थ देखा। वे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए थे, शरीर और आत्मा को भिन्न-भिन्न जान रहे थे, यथाजात नग्नरूप धारण किये हुए थे तथा जिनेन्द्र-कथित धर्म को धारण किये हुए थे।

सीता-सहित राम-लक्ष्मण ने उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया और मन में सोचने लगे कि **संसार के सभी कार्य असार हैं, दुःख के कारण हैं, केवल एक धर्म ही सुख का कारण है।** इसके बाद वे तीनों उन मुनियुगल के पास बैठकर उनकी भक्ति करने लगे।

तभी वहाँ कुछ महाभयानक शब्दों के साथ एक भयंकर विकराल रूपधारी राक्षस के द्वारा उन महामुनिराजों पर उपसर्ग करने का प्रयास किया जाने लगा, मुनिराजों के शरीर से सांप, बिच्छु लिपटने लगे।

राम-लक्ष्मण उस देव पर अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने मुनिराज के शरीर से लिपटे साँप, बिच्छुओं को दूर किया तथा उनके चरणारविन्दों को नमस्कार कर, उनके श्रीचरणों में सीता को छोड़कर अपने हाथ में धनुष लिया तथा मेघ के समान गर्जना करने वाले अपने-अपने धनुष टंकारे। तब 'ये बलभद्र और नारायण हैं' – ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ नामक ज्योतिष्क देव भाग गया। उसकी सारी उपद्रवकारी चेष्टाएँ विलीन हो गयीं।

बाहर में यह सब हो रहा था; परन्तु उन महामुनियों का ज्ञानोपयोग तो उस समय अंतरंग में शुक्लध्यानमय हो रहा था। फलस्वरूप दोनों मुनिराजों को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तदनन्तर तप के फल की प्रशंसा करते हुए चारों निकायों के देव तथा विद्याधर वहाँ आ पहुँचे और केवलज्ञानी भगवंतों की पूजा कर यथास्थान बैठ गये।

राम के निवेदन करने पर भगवान की दिव्यध्वनि खिरी, उसमें आया – "शरीर के साथ परिवार, परिग्रह आदि भिन्नक्षेत्रवर्ती पदार्थों का संयोग है। बहिरंग में, जहाँ ये भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध हैं वहीं अन्तरंग में, यह आत्मा अज्ञानरूप परिणमन कर रहा है। वस्तुस्थिति का ज्ञान कराने वाले ये सभी कथन सत्य है – ऐसा जानो।

अब हमें शुद्ध आत्मा को प्राप्त करने की ओर बढ़ना है तो हमारे साथ जो संयोग हैं, उन्हें हमें संयोग मानना है उनके साथ अपना एकत्व नहीं मानना है।"

राम-लक्ष्मण और सीता ने अद्भुत भक्ति की, अनेक जीवों ने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त किया।

गिद्ध पक्षी जटायु को धर्म प्राप्ति – आगे भ्रमण करते हुए राम, लक्ष्मण और सीता नर्मदा किनारे दण्डक वन में आकर रहने लगे, एक

दिन आहार के समय श्रीराम द्वारपेक्षण हेतु खड़े हुए थे कि उनके महाभाग्य से वहाँ आकाशगामी गुप्ति-सुगुप्ति नाम के मुनियों का आगमन हुआ, उन्होंने परमभक्ति से उन्हें आहार कराया। उस समय अतिशयवंत मुनियों को देखकर एक गिद्ध पक्षी को जाति-स्मरण हुआ, वह वृक्ष के नीचे विराजमान मुनिराज के चरणों में पड़ गया।

ऋद्धिधारी मुनिराज की चरण-धूल के प्रताप से उस पक्षी का शरीर रत्न-समान अत्यंत तेजस्वी बन गया; आश्चर्य को प्राप्त वह पक्षी आनन्दमय अश्रु सहित, पंख पसार कर मुनिराज के समीप मोर की तरह नाचने लगा। अहो, माँसाहारी पक्षी भी जिनमुनि की शरण में आते ही अत्यन्त शान्त हो गया और उसके परिणाम निर्मल हुये।

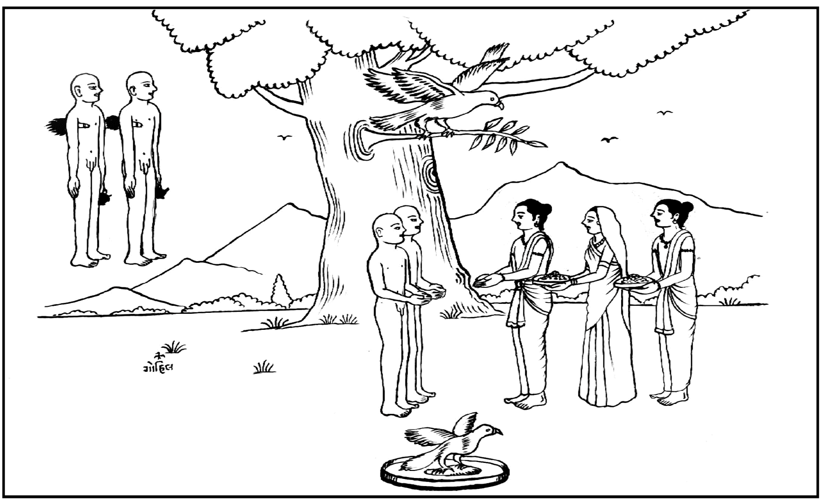

परन्तु जो जिन मुनि का सान्निध्य पाकर भी उनकी शरण ग्रहण नहीं करते, वे अधोगामी होते हैं, जैसा कि इसी गिद्ध पक्षी के जीव ने अपने पूर्वभव राजा दण्डक की पर्याय में किया था, ज्ञातव्य है कि राजा दण्डक के भव में इसने मुनिराज के गले मरा हुआ सर्प डाला था और कुछ दिनों बाद भी मुनिराज को यथावत् बैठा हुआ देखकर उनका अनुयायी हो गया था; परन्तु रानी के षड़यंत्र में फसकर पुन: उनका द्वैषी

होकर ५०० मुनिराजों को घानी में पेलकर मारने के फल में नरकादि गतियों के दुख भोगकर यह गिद्ध-पक्षी हुआ। **अतः हमें सदा सावधान रहते हुए अपने विवेक को जाग्रत रखना चाहिए, किसी की बातों में आकर अपना भव नहीं बिगाड़ना चाहिए।**

गिद्ध-पक्षी ने मुनिराज से धर्मोपदेश सुनकर श्रावक के व्रत लिये तथा हिंसादि पापों का त्याग किया; अभक्ष्य छोड़ दिया और बारम्बार पैर ऊँचे करके चोंच हिलाकर मुनियों की वंदना करने लगा। इस तरह गिद्ध पक्षी ने श्रावक धर्म अंगीकार किया। ये देखकर सीता अतिप्रसन्न हुई तथा वात्सल्यभाव से उसने खूब प्रीतिभाव जताया।

मुनिराज ने उस पक्षी से कहा – 'हे भव्य ! अब भयभीत मत हो। जिस समय जो बात जैसी होने वाली है, वह होती ही है। होनहार को मिटाने में कोई समर्थ नहीं, अब रोता क्यों है ? अब पश्चाताप का त्याग कर और सुखी हो। गुप्ति और सुगुप्ति दोनों मुनिराज भी जाते-जाते समझा गये कि इस भयानक वन में क्रूर जीव बसते हैं, इसलिए आप इस सम्यग्दृष्टि श्रावक पक्षी की रक्षा करना, पक्षी को जिनधर्मी जानकर राम-लक्ष्मण और सीता उसके प्रति धर्मानुराग करने लगे, सीताजी तो माता समान उसका पालन करती थीं। अहो ! देखो तो सही जैनधर्म का प्रभाव !! गिद्ध जैसे क्रूर, माँसाहारी पक्षी ने भी मुनि के संग में जैनधर्म प्राप्त कर लिया और अद्भुत रूपवान बन गया। वाह रे वाह ! साधर्मी ! भले ही तू तिर्यंचगति से हो तो भी धर्मात्माओं को तेरे ऊपर प्रेम आता है। तेरी अद्भुत दशा देखकर वन के दूसरे पशु-पक्षी भी आश्चर्य पाते हैं।

अहो, जैन मुनियों का जिसको समागम भी हुआ उसके महाभाग्य की क्या बात ? **(जटायु के पूर्वभव जानने की जिज्ञासा पूरी करने हेतु जैनधर्म की कहानियाँ भाग-२४ का स्वाध्याय करना चाहिए।)**

लक्ष्मण को सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति – एकबार लक्ष्मण दण्डकवन की शोभा देखने निकले; वहाँ एकाएक आश्चर्यकारी सुगंध आई....जहाँ से सुगंध आ रही थी, वहाँ जाकर देखा तो एक अद्भुत 'सूर्यहास' तलवार चमक रही थी। रावण की बहन चन्द्रनखा के पुत्र शंबूक ने १२ वर्ष की विद्या साधना द्वारा ये दिव्य 'सूर्यहास' तलवार सिद्ध की थी, परन्तु यह सिद्ध हुई कि इतने में ही लक्ष्मण ने आकर उसे हाथ में लेकर उसकी तीक्ष्ण धार को देखने हेतु उसे बाँस के बीड़े (समूह) के ऊपर चलाया, जिससे उस बाँस के बीड़े (समूह) के बीच में स्थित शंबूक का शिरच्छेद हो गया।

अरे दैव ! विद्या द्वारा तलवार साधी किसी ने, हाथ में आई किसी दूसरे के। बारह वर्ष की तपस्या द्वारा सिद्ध हुई तलवार स्वयं के ही घात का कारण बनी....**अरे ! तलवार को साधने के बदले आत्मा को साधा होता तो कैसा उत्तम फल पाता।**

रावण के पास 'चंद्रहास खड्ग' था, उसके सामने लक्ष्मण को यह 'सूर्यहास खड्ग' प्राप्त हुआ। देखो, पुण्य प्रभाव ! **बिना साधे भी पुण्य-प्रताप से उसे यह सूर्यहास तलवार हाथ आ गई और हजारों देव लक्ष्मण को वासुदेव जानकर उनकी सेवा करने लगे।**

लक्ष्मण और खरदूषण का युद्ध – शंबूक का पिता खरदूषण उस समय समुद्र के बीच दूसरी पाताल लंका का स्वामी था। शंबूक के मरण की बात सुनते ही उसे क्रोध आया और वह तुरन्त आकाशमार्ग से १४,००० राजाओं सहित दंडकवन में आ पहुँचा। सेना के भयानक शब्दों को सुनकर सीता भयभीत हो गई। राम ने धैर्य बंधाया और शत्रु के सामने लड़ने को बाण हाथ में लिया, परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें रोका और कहा – ''बड़े भ्राता ! जब मैं हाजिर हूँ फिर आपको परिश्रम करने की जरूरत नहीं, आप यहीं रहो और भाभी माँ की रक्षा करो। मैं अकेला

ही दुश्मनों को भगा डालूँगा'' – ऐसा कहकर लक्ष्मण लड़ने चले गये। एक तरफ हजारों विद्याधर और दूसरी तरफ अकेले लक्ष्मण, बड़ा युद्ध हुआ। विद्याधरों के हजारों बाणों को लक्ष्मण अकेले ही रोकने लगे।

जैसे संयमी मुनि आत्मज्ञान द्वारा विषय-वासनाओं के समूह निवारण करते हैं, वैसे ही लक्ष्मण वज्र-बाणों द्वारा दुश्मनों का निवारण करते थे। विद्याधरों की सेना घबड़ा गई। खरदूषण का समाचार पाकर रावण भी उसकी सहायता के लिए क्रोध से धधकता हुआ पुष्पक-विमान में बैठकर युद्ध स्थल की ओर चल ही दिया था।

झूठा सिंहनाद – मार्ग में राम के समीप सीता को देखकर, उसके अद्‌भुतरूप के सामने रावण आश्चर्यचकित हुआ और उसका क्रोध पल भर में ठंडा हो गया। वह सीता के रूप पर अत्यन्त मोहित होता हुआ विचार करने लगा कि 'इस सीता के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है' अत: 'मेरे आने की खबर' खरदूषण की सेना में किसी को पड़े, उसके पहले ही मैं चुपचाप सीता को हरणकर लंका ले जाऊँ; परन्तु सीता के समीप ही रामचन्द्रजी के बैठे होने से पहले तो उसकी हिम्मत न पड़ी। फिर उसने विद्या के बल से जाना कि 'लक्ष्मण सिंहनाद करे तो राम यहाँ से उसके पास जायेंगे और सीता अकेली रह जायेगी' – ऐसा विचार कर रावण ने कपट से लक्ष्मण जैसी ही आवाज निकाली –

'हे राम ! हे राम !' ऐसा कृत्रिम सिंहनाद किया। **अरे रे ! कामांध रावण सिंहनाद द्वारा मानो अपनी मृत्यु को ही बुला रहा हो।**

सिंहनाद सुनते ही राम को आघात लगा, वे तुरन्त हाथ में धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण की मदद के लिए दौड़ पड़े।

सीता का अपहरण – राम के जाने के बाद सीता को अकेली पाकर रावण उसे चोरों की भाँति उठा ले गया। उस समय सीता पर सगे भाई के समान प्रेम करने वाले जटायु पक्षी ने रावण को चोंच मार-मारकर

सीता को छुड़ाने की बहुत कोशिश की, परन्तु रावण जैसे बलवान के सामने बेचारे पक्षी की क्या चले ? अन्त में रावण के प्रहार से वह मूर्छित हो गया और रावण पुष्पक-विमान में सीता को लेकर लंका की ओर भाग गया।

सीता अत्यन्त विलाप कर रही थी। राम के विरह में सीता का रुदन देखकर रावण भी उदास हो गया। लगता है यह मुझे सहजता से स्वीकार करने वाली नहीं दिखती, परन्तु मैं भी त्रिखण्डाधिपति हूँ। लंका जाकर मैं इस हठीली स्त्री को भी किसी उपाय से वश में कर ही लूँगा – ऐसा विचारता हुआ रावण, सीता को लेकर लंका की तरफ चला गया। **जैसे-जैसे लंका उसके पास आ रही थी, मानो वैसे-वैसे उसका मरण भी पास आ रहा था।**

हमें सीता के अपहरण के समाचार सुनकर दुख होना स्वाभाविक है, पर हमें अभी यह जानना जरूरी है कि रामचंद्रजी जब लक्ष्मण के पास पहुँचे, तब वहाँ क्या प्रतिक्रिया हुई।

जब लक्ष्मण युद्ध में खरदूषण की सेना को परास्त कर उसे भगाने की तैयारी में थे कि तभी श्रीराम वहाँ आ पहुँचे। श्रीराम को देखते ही

लक्ष्मण को धक्का-सा लगा और वे कहने लगे – "हाय, हाय ! आप ऐसे भयंकर वन में सीता माता को अकेली छोड़कर यहाँ क्यों आये ?"

राम ने कहा – "मैं तुम्हारा सिंहनाद सुनकर आया हूँ।"

लक्ष्मण ने कहा – "अरे, मैंने तो कोई सिंहनाद किया ही नहीं मुझे शत्रु का कोई भय ही नहीं, जरूर किसी ने मायाचारी की है; इसलिए आप शीघ्र ही भाभी माँ के पास वापस जाओ।"

लक्ष्मण की बात सुनते ही श्रीराम को परिस्थिति समझते देर नहीं लगी। और वे "अरे, उस अकेली सीता का क्या हुआ होगा ?" – इत्यादि विचार करते हुए शीघ्र ही अपने स्थान पर आ गये, परन्तु यह क्या ? यहाँ तो जानकी कहीं भी दिखाई नहीं दे रही है, कदाचित् 'मुझे दृष्टिभ्रम हुआ होगा ?' – ऐसा समझकर राम पुनः पुनः आँखों को मलकर चारों ओर नजर डालते हैं, परन्तु सीता वहाँ हो तो दिखे न ! राम तो 'हाय सीता ! हाय सीता !' कहते हुए मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े।

जटायु पक्षी का समाधिमरण – मूर्छा उतरी, तब पुनः ढूँढने लगे। चारों ओर ढूँढते-ढूँढते जब एक जगह जटायु पक्षी को तड़फता देखा, वह भी मरण के निकट था, तुरन्त राम ने सब कुछ भूलकर पहले उसे पंचपरमेष्ठी का नमस्कार मंत्र सुनाया। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप आराधना सुनाई तथा अरहंतादि का शरण ग्रहण कराया। सम्यक्त्वसहित श्रावकव्रत का धारक वह पक्षी शांतिपूर्वक श्रीराम के मुख से धर्म श्रवण करते-करते समाधिमरण करके स्वर्ग में गया और भविष्य में मोक्ष पायेगा।

'एक तो सीता का विरह दूसरे जटायु पक्षी का मरण।' – इस प्रकार दुगने शोक के कारण राम एकदम विह्वल हो गये। चारों तरफ वृक्षों तथा पत्तों से पूछने लगे –

विरहवेदना में भी अचलित ज्ञानचेतना – ''हे ऊँचे गिरिराज! मैं दशरथ राजा का पुत्र राम, तुमसे पूछता हूँ कि मेरी प्राण वल्लभा सीता को कहीं तुमने देखा है ?'' कौन जवाब दे ! पश्चात् क्रोध से हाथ में धनुष लेकर टंकार करते हैं, परन्तु किसे मारें ? डर के कारण सिंह, वाघ आदि क्रूर प्राणी भी दूर भाग गये....राम पछताने लगे।

''अरे रे, झूठे सिंहनाद से मैं भ्रमित हो गया और अकेली सीता को छोड़ गया। अरे, कहीं सीता को सिंह-वाघ तो नहीं खा गये ? दूसरी ओर भाई लक्ष्मण भी अभी लड़ाई में है, वह भी जीवित आयेगा या नहीं? इसका भी संदेह है ! अरे रे ! सारा संसार ही असार तथा संदेह रूप है। संयोगों का क्या भरोसा ! संसार का ऐसा स्वरूप जानते हुए भी मैं सीता के मोह से आकुल-व्याकुल हो रहा हूँ।''

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि – ऐसे समय में भी श्रीरामचन्द्रजी धर्मात्मा हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, मोक्षमार्गी हैं, मोक्षमार्ग को साध रहे हैं, उनकी ज्ञानचेतना नष्ट नहीं हुई। औदयिक भाव के समय भी उदयभाव, उदयभाव का काम करते हैं; ज्ञानचेतना, ज्ञानचेतना का काम करती है; दोनों का कार्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न है। **अकेले औदयिक भावों में श्रीराम को नहीं देखना, उनसे भिन्न ज्ञानचेतना रूप राम को भी देखना, तभी तुम श्रीराम को पहिचान सकोगे।** अकेले उदयभावों से राम को पहिचानोगे तो श्रीराम के साथ अन्याय करोगे, तुम्हारा ज्ञान भी मिथ्या नाम पायेगा।

ज्ञानी महापुरुषों के जीवन की खूबी ही यह है कि उदयभावों के बीच भी चैतन्यभाव की मीठी, मधुर, शांतधारा उनके जीवन में निरन्तर बहती रहती है। पूर्व के पुण्य-पाप का उदय तो धर्मी को भी आता है – ऐसा जानकर हे भव्यजीवो ! **पुण्योदय में तुम मोहित मत होना और पाप के उदय में धर्म को नहीं छोड़ना।**

संसार की (पुण्य-पाप की) ममता छोड़कर, चैतन्यभाव द्वारा सदा ही जिनधर्म की आराधना में चित्त को जोड़ो।

खरदूषण का मरण – यहाँ, खरदूषण की विशाल सेना के सामने लक्ष्मण अकेले ही लड़ रहे हैं, इतने में वहाँ से चन्द्रोदय का पुत्र विराधित नाम का विद्याधर राजा निकला, उसने स्वयं की सेना सहित लक्ष्मण की मदद की।

खरदूषण, स्वयं के पुत्र को मारने वाले लक्ष्मण को मारने के लिए तलवार लेकर दौड़ा, परन्तु लक्ष्मण ने सूर्यहास तलवार द्वारा उसका मस्तक छेद दिया। अरे, **पुत्र ने बारह वर्ष के तप द्वारा जो तलवार साधी, उसी तलवार द्वारा ही उसका और उसके पिता का घात हुआ ! अरेरे, पुण्य-पाप के खेल संसार में विचित्र हैं।**

ज्ञातव्य है कि राजा चन्द्रोदय विद्याधर से पाताल लंका जीत खरदूषण उस पर राज्य कर रहा था। आज लक्ष्मण ने खरदूषण को मार कर पुन: पाताल लंका का राज्य उसके पुत्र विराधित को सौंपा और स्वयं अनेक विद्याधरों सहित तुरन्त राम के पास आये। वे देखते हैं कि श्रीराम तो जमीन पर पड़े हैं और सीता माता कहीं दिखाई ही नहीं देतीं, जटायु भी वहीं जमीन पर मृत पड़ा है।

राम को सचेत करते हुए लक्ष्मण ने कहा – "अरे बन्धु ! उठो-उठो ! ऐसे जमीन पर कैसे सो रहे हो ? माता सीता कहाँ हैं ?"

तब राम सचेत हुए, लक्ष्मण को कुशल देखकर थोड़ा संतोष हुआ; उसे हृदय से लगाकर राम रो पड़े और कहा –

"हे लक्ष्मण ! सीता कहाँ गई – ये मैं नहीं जानता, कोई उसे ले गया या सिंह उसे खा गया ? उसकी मुझे खबर नहीं।"

लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य बँधाया और विद्याधरों को आज्ञा की –

"जहाँ से हो, वहाँ से सीता का शीघ्र पता लगाकर आओ"

विद्याधरों ने आस-पास बहुत शोधा (खोजा), परन्तु सीता कहीं दिखाई नहीं पड़ी, इससे राम हतास हो गये –

"अरे हम माता-पिता, भाई, कुटुम्ब और राज्य सभी को छोड़कर यहाँ वन में आये, यहाँ भी असाता कर्मों ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा.... अरे, विचित्र है संसार की गति !"

पाताल लंका में राम का रुकना – अबतक पाताल लंका के नये राजा विद्याधर विराधित भी वहाँ आ गये, उन्होंने भी सभी को धैर्य बंधाया –

"हे स्वामी ! धैर्य ही महापुरुषों का सर्वस्व है। सभी प्रसंगों में धैर्य के समान दूसरा कोई उपाय नहीं। आपका पुण्य-प्रताप महान है, इससे थोड़े ही दिनों में आप सीतादेवी को जरूर देखोगे, इसलिए शोक छोड़ो और अब मेरे साथ पाताल लंका में आकर रहो। वहाँ से सब उपाय करेंगे। इस वन में रहना अब उचित नहीं, क्योंकि रावण के बहनोई खरदूषण को हमने मारा है, इसलिए उसके मित्र विद्याधर राजा बैर लिये बिना नहीं रहेंगे; उसमें भी हनुमान जैसा महान शूरवीर, वह भी खरदूषण का जमाई है – वह भी खरदूषण के मरण की बात सुनते ही एकदम क्रोधित होगा, इसलिए आप सुरक्षित स्थान में आकर रहो।"

राम और लक्ष्मण दोनों भाई वर्तमान पर्यायगत मजबूरी जान उदासचित्त होकर विराधित के साथ पाताल लंका की अलंकारोदय नगरी को चले गये। इस समय इनकी स्थिति ऐसी थी, **जैसे सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र शोभा नहीं पाते, वैसे ही सीता के बिना राम-लक्ष्मण भी शोभा नहीं पाते थे**। सीता के साथ तो वन में भी अच्छा लगता था, सीता के बिना राजमहल में भी अच्छा नहीं लगता। सीता के बिना राम गुमसुम उदासचित्त रहते हैं....एक चैतन्य परिणति

के अलावा अन्यत्र कहीं उनका चित्त नहीं लगता था। **वे जितने समय जिनमंदिर में जाकर बैठते, उतने समय उनके चित्त में शांति रहती और सीता के विरह का दुःख कम होता।** लक्ष्मण, विराधित वगैरह सभी राम को प्रसन्न रखने के लिए अनेक उपाय करते, सीता के भाई भामण्डल को भी आने हेतु संदेश भेज दिया।

चलो ! जबतक भामण्डल आता है और सीता की खोज की रूपरेखा पाताल लंका में बनती है, तबतक हम स्वयं सीता के समाचार जानने हेतु वहाँ चलते हैं, जहाँ रावण सीता को लेकर गया है।

रत्नजटी विद्याधर का रावण से मुकाबला – एक ओर श्रीराम आदि सीता के विषय में चिंतामग्न थे तो दूसरी ओर आकाशमार्ग से सूर्य से भी ऊपर रावण का विमान सीता को लंका की ओर ले जा रहा था, क्योंकि सूर्य-चन्द्र तो मेरुपर्वत की अपेक्षा बहुत नीचे हैं, जबकि विद्याधर तो मेरु पर्वत के छोर तक भी जाते हैं अर्थात् सूर्य-चन्द्र से भी ऊपर गमन करना विद्याधर मनुष्यों के लिए सहज है। उस समय रत्नजटी नाम के विद्याधर को सीता के रुदन की आवाज सुनाई पड़ी, इस कारण उसने रावण को रोका और कहा –

"अरे दुष्ट ! इस धर्मात्मा-सीता को तू छोड़ दे, सती को सताने का महान अपराध करके तू कहाँ जायेगा ? ये सीता श्री रामचन्द्रजी की रानी और मेरे मित्र भामण्डल की सगी बहिन है, उसे तू छोड़ दे।" परन्तु रावण ने उसकी एक न सुनी और उसकी विद्यायें हर लीं, इससे वह नीचे गिर पड़ा।

राम के विरह में भी सीता शील में अडिग – रावण सीता को लेकर लंका पहुँचा....उसका मन सीता में मोहित है, वह सीता में भी मोह उत्पन्न करने के लिए बहुत विनती करता है; परन्तु ये तो सीता है ! वह कहती है कि – "अरे रावण ! तू अपना धर्म भूला है ! तू विवेक

भूला है ! **जैसे मणिधर नाग के शिर में से उसके जीवित रहते कोई उसका मणि निकाल नहीं सकता, वैसे ही सीता के हृदय में राम के अलावा कोई मोह उत्पन्न नहीं करा सकता।**''

लंका में रावण ने एक अत्यन्त मनोहर दैवी-बगीचे में सीता को रखा....परन्तु सीता को राम के बिना कहीं चैन नहीं....। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक राम-लक्ष्मण के कुशल-क्षेम की बात न सुन लूँ, तब तक मेरे आहार-जल का त्याग है। दिन-रात उसे चिन्ता हो रही थी कि राम-लक्ष्मण युद्ध में गये थे, उनका क्या हुआ होगा? यहाँ उनके समाचार कौन देगा; वह भी जितने समय पंचपरमेष्ठी में चित्त को लगाती है, उतने समय संसार के सर्व दु:खों को भूल जाती है। वाह, **पंचपरमेष्ठी भगवंतो ! तुम्हारा प्रताप अजोड़ है !** हमारे हृदय में जब तक तुम्हारी उपस्थिति है, तब तक संसार का कोई दु:ख टिक नहीं सकता।

परिस्थिति एक, भाव अनेक – लंका में जैसे राम के विरह में सीता उदास है, वैसे ही पाताल लंका में सीता के विरह में राम भी उदास हैं तथा जैसे राम उदास हैं, वैसे रावण भी सीता के बिना उदास है। तब पटरानी मंदोदरी रावण से पूछती है –''तुम तीन खंड के स्वामी हो, फिर भी आजकल इतने उदास क्यों रहते हो?''

तब रावण, सीता की बात बताते हुए कहता है कि हे रानी ! ''सीता के बिना मुझे चैन नहीं है।''

मंदोदरी कहती है – ''आप तो महा शक्तिशाली हो, तो सीता को जबरदस्ती वश में क्यों नहीं करते ?''

तब रावण कहता है – ''सुनो देवी ! मैंने अनंतवीर्य केवलीप्रभु के समीप ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, उसे मैं नहीं भोगूँगा, उससे बलात्कार नहीं करूँगा और सीता मुझे जरा भी नहीं चाहती, लेकिन मैं मेरी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।''

देखो ! **एक छोटा-सा नियम भी रावण को कितना उपयोगी हुआ,** इस नियम ने ही उसे सीता के साथ बलात्कार करने से रोका।

रावण की बात सुनकर मंदोदरी विचार में पड़ गई – ''अहो ! जो तीन खंड का स्वामी और अद्‌भुत जिसका रूप – ऐसे रावण को भी जो नहीं चाहती, वह सीता कितनी महान होगी ? १८ हजार महान सुन्दर रानियों का स्वामी जिसके रूप पर मोहित है, वह सीता कितनी सुन्दर होगी ? और उसका सतीत्व कितना महान होगा, जो रावण जैसे त्रिखण्डी के प्यार की कैद में होकर भी उसे किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं कर रही। सचमुच शील से महान जगत में कोई वस्तु नहीं है।''

अरे, यह मोह की कैसी पराकाष्ठा है कि एक ओर मेरे स्वामी त्रिखण्डाधिपति इस ईषत् काम की आग में जल रहे हैं और दूसरी ओर वे अपनी प्रतिज्ञा के प्रति भी दृढ़ हैं; पर यह दोनों बातें एक साथ कैसे संभव हैं ? जब इस ईषत् काम-कषाय से भी जीव इतना दुखी हो सकता है, तब फिर समस्त कषायों के अधिपति ऐसे मोह – मिथ्यात्व के वश होकर जीव अनन्त संसार के भयंकर दुख भोगे – इसमें क्या आश्चर्य है अर्थात् कोई आश्चर्य नहीं।''

वह आगे विचार करती है – ''यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ''यह जीव स्वयं मिथ्यात्व के वश स्वयं हुआ है, उसे मिथ्यात्व ने वश किया नहीं है; क्योंकि दर्शनमोह की प्रकृति तो स्वयं जड़ है, वह दूसरे को अपने वश में कैसे करेगी ? जैसे रावण को सीता ने वश में नहीं किया है, बल्कि रावण स्वयं सीता के वश हो रहा है।''

– ऐसा विचार करते हुए भी मंदोदरी को ऐसा भाव आया कि मैं एकबार सीता के पास जाऊँ और उसे मनाकर अपने स्वामी का दुःख मिटाऊँ ! यदि वह सीता सचमुच सच्चे शील की धारक पतिव्रता होगी तो वह मेरे समझाने पर भी नहीं मानेगी।

अत: वह सीता के पास गई और उसके रूप को देखकर वह भी आश्चर्य चकित हो गई थी।

फिर उसने सीता से अत्यंत विनम्र होकर कहा – "हे देवी ! तू रावण के ऊपर प्रसन्न हो ! उसकी इच्छा के वश हो, राम की आशा छोड़ दे। तेरा राम तुझे छुड़ाने यहाँ आ सके – यह संभव नहीं है, ये तो बड़े भारी समुद्र के बीच विद्याधरों की लंका नगरी है; इसलिए तू शोक छोड़कर प्रसन्न हो और रावण की महारानी बनकर तीन खण्ड के साम्राज्य का भोग-उपभोग कर ! व्यर्थ में दु:खी मत हो, अन्न-जल ग्रहण कर।"

तब जिसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं – ऐसी सीता कहने लगी– "हे देवी ! आप तो मेरी माता समान हो, आप स्वयं पतिव्रता होने पर भी ऐसे नीति-विरुद्ध वचन क्यों बोलती हो ? ये आपको शोभा देते हैं क्या ? शान्त चित्त होकर आप ही विचार करो। रावण का अतिसुन्दर रूप हो या उसकी तीन खंड की राज-संपदा हो, उसे मैं अपने शीलव्रत के सामने सर्वथा सड़े हुए तृण के समान तुच्छ समझती हूँ।"

मंदोदरी का सीता को आश्वासन – तब मंदोदरी ने सीता को भी अपनी पुत्री समान समझकर आश्वासन तथा हिम्मत दी कि – "बेटी सीता ! तू किसी भी प्रकार से रावण के वश नहीं होना ! शीलधर्म में अडिग रहना.... घबड़ाना मत ! और रावण को भी इस दुष्कृत्य से रोकने का सीता को वचन दिया।"

अभी मंदोदरी और सीता की बात चल ही रही थी कि कामातुर रावण वहाँ आ पहुँचा। तब सीता ने उसका तिरस्कार करते हुए क्रोध पूर्वक कहा – "अरे पापी ! दुष्ट ! तू मुझसे दूर रहना, मुझे छूना मत !"

सीता के प्रताप के सामने, महाप्रतापी रावण की आँखों के सामने भी थोड़ी देर के लिए अंधेरा छा गया। लंका के बगीचे में अकेली शीलवती सीता सती, अनेक उपद्रवों के बीच भी अपने शीलव्रत से

रंचमात्र भी न डिगी – धन्य हो ऐसी महासती सीता को ! मंदोदरी यह सोचते हुए वहाँ से चली गई।

रावण का भाई विभीषण धर्मात्मा था और रावण के दरबार का खास सलाहकार था। उसे जब खबर पड़ी, तब वह सीता के पास आया। सीता रो रही थी, वह प्रथम तो भयभीत हो गई, परन्तु विभीषण ने कहा– "बहन ! तू डर मत, मुझे अपना भाई समझ, मैं रावण को समझाऊँगा।"

पश्चात् विभीषण ने रावण को बहुत समझाया – "सीता सती धर्मात्मा है, उसे सन्मान सहित श्रीराम को वापस सौंप दो – ऐसा अनीति का कार्य तुम्हें शोभा नहीं देता।" अभिमानी रावण ने उसकी एक भी बात नहीं मानी, उल्टा ये कहने लगा – "मैं तीन खंड का स्वामी हूँ, इसलिए तीन खंड में जितनी सुन्दर वस्तुयें हैं, वे सब मेरी ही हैं।"

सीताजी बगीचे में अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हैं। अनेक राक्षस विद्याधरों की स्त्रियाँ विविध सामग्रियों द्वारा उसे प्रसन्न करना चाहती हैं, परन्तु जैसे **मोक्ष के साधक मुमुक्षु का मन संसार में नहीं लगता, वैसे ही सीता का मन उनमें कहीं नहीं लगता। जैसे अभव्य जीव मोक्ष सिद्ध नहीं कर सकता; वैसे ही रावण की दूतियाँ सीता को साध न सकीं,** वश में न कर सकीं। रावण बारम्बार दूती से पूछता है, दूती द्वारा रावण ने जाना कि सीता ने आहार-पानी भी छोड़ दिया है और वह किसी के सामने देखती भी नहीं है, पूरे दिन गहरे विचारों में गुमसुम बैठी रहती है – यह सुनकर रावण खेद-खिन्न हुआ और चिन्ता में डूब गया.... और निराश होकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा।

अरे रे ! हजारों सुन्दरियों का स्वामी भी वासना की अग्नि में कैसा जल रहा है !! **ऐसी दुःखमय विषय-तृष्णा से छूटकर जिसने निर्विषय चैतन्यतत्त्व के महा-आनन्द को साधा, वे महात्मा इस जगत में धन्य हैं।**

अब हम सभी पाताल लंका चलते हैं, जहाँ सीता की खोज हेतु रामचंद्रादि विचार-विमर्श कर किस निर्णय पर पहुँचे हैं – यह जानते हैं।

बालिराज का वैराग्य – किष्किंधापुर के राजा सूर्यरज के पुत्र बालि और सुग्रीव दोनों सगे भाई थे, उनकी एक श्रीप्रभा नाम की बहिन थी, एक बार रावण ने संदेश भेजा कि तुम दोनों आकर मुझे नमस्कार करो और अपनी बहिन का मेरे साथ विवाह करो, बालिराज की ऐसी प्रतिज्ञा थी कि 'मैं सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नमस्कार नहीं करुँगा,' फिर भी... अत: बालिराज तो संसार की ऐसी विचित्रता देखकर विरक्त हो गये और जिनदीक्षा लेकर कैलाशपर्वत पर ध्यानस्थ हो गये; लेकिन सुग्रीव ने रावण की आज्ञा का पालन कर अपना राज्य संभाला।

एकबार रावण जब अपने विमान से पर्यटन हेतु जा रहा था, जब कैलाशपर्वत के ऊपर से निकलते समय उसका विमान अटक गया,

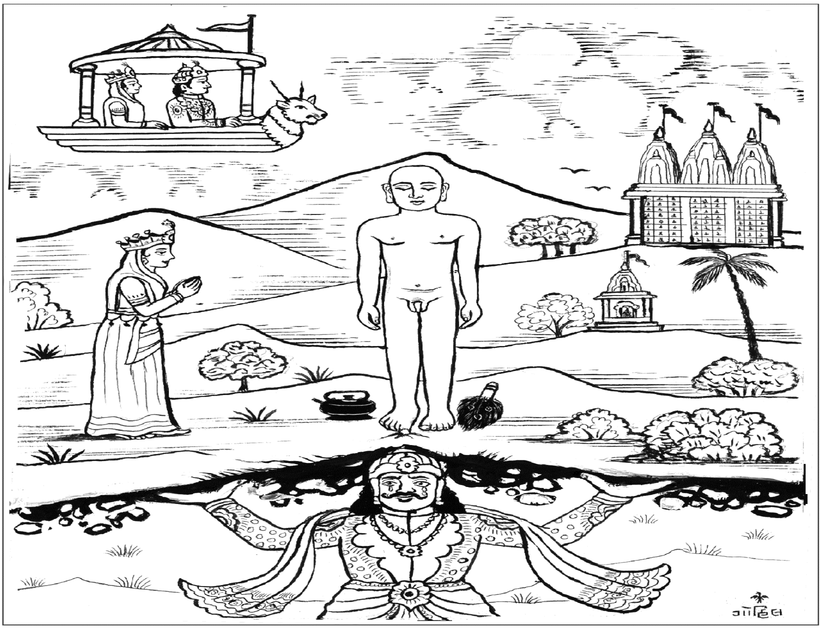

उसने नीचे आकर जब बालि मुनिराज को ध्यानमग्न देखा तो 'पूर्व में इसी ने मेरा अपमान किया था' – ऐसा विचार कर बदले की भावना से कैलाशपर्वत को ही उखाड़ फैकने के लिए उद्यत हुआ। तब बालि मुनिराज ने यह विचार कर कि इस पर्वत पर अनेक जिनालय एवं अन्य मुनिराज विराजमान हैं, अत: उन्होंने अपने पैर का अंगुष्ठ दबाया तब रावण उस दबाव के कारण बहुत बुरी तरह चिल्लाता हुआ चीखने लगा। **उसकी रव (आवाज) से सभी घबड़ा गये, पता करने पर खबर मिली कि यह दशानन के दुखी होने की आवाज है, तभी से लोग उसे रावण कहने लगे अर्थात् तभी से उसका नाम रावण पड़ गया।**

तब बालि मुनिराज ने अपना अंगुष्ठ ढ़ीला कर दिया और रावण भारमुक्त हो मुनिनाथ के पास आकर क्षमायाचना करता हुआ उनकी भक्ति करने लगा। – ऐसे बालि मुनिराज ने अपने इस अपराध की गुरु के पास जाकर शुद्धि की और **क्षपकश्रेणी आरोहण कर कैलाशपर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।** (इसका विस्तृत विवरण पद्मपुराण के नववें सर्ग वर्णित है। संक्षिप्त विवरण जानने हेतु पाठकगण जैनधर्म की कहानियाँ भाग १२ का अध्ययन करें।)

राम–सुग्रीव का मिलन – इधर रामचंद्रजी कुछ समय पाताल लंका में रहकर, फिर सीता की खोज में निकल पड़े, उनके साथ विराधित आदि अनेक विद्याधर भी थे। एक दिन उनका मिलन किष्किंधा नगरी के राजा सुग्रीव से हुआ, जो महामुनि बालि के सहोदर थे।

उस समय किष्किंधा नगरी के राजा सुग्रीव के यहाँ एक विचित्र बात बनी। सुग्रीव की पत्नि सुतारा अत्यन्त मनोहर थी; साहसगति नाम का एक विद्याधर उस पर मोहित हुआ और वह स्वयं सुग्रीव जैसा ही रूप बनाकर महल में घुस गया और सच्चे सुग्रीव को निकाल दिया। सच्चा सग्रीव स्त्री के विरह में बहुत दु:खी हुआ, उसने अपने दामाद हनुमान की

मदद माँगी; परन्तु दोनों में से सच्चा सुग्रीव कौन है और झूठा सुग्रीव कौन है ? यह नहीं पहिचान सकने के कारण हनुमान भी कुछ नहीं कर सके।

अंत में वह सुग्रीव राम-लक्ष्मण की शरण में आया। राम भी स्त्री के विरह में दु:खी थे और सुग्रीव भी स्त्री के विरह में दु:खी थे। दोनों समान दुखिया एक-दूसरे के मित्र बने। सुग्रीव राजा वानरवंशी विद्याधरों के अधिपति थे; सुग्रीव ने आकर राम को सभी बातें बताईं।

श्री राम ने विचार किया कि – ''मैं इसकी स्त्री वापिस दिलाकर इसका विरह मिटा दूँगा तो ये भी सीता की खोज करने में मेरा सहयोग करेगा और यदि यह भी खोज नहीं कर सका तो मैं निर्ग्रंथ मुनि होकर मोक्ष को साधूँगा।''

सुग्रीव ने पुन: कहा – ''हे मित्र ! मेरा कार्य होने पर मैं भी तुरन्त ही सीता बहिन की खोज करूँगा।'' – यह सुनकर राम ने साहसगति को हराकर सुग्रीव की स्त्री और उसका राज्य वापस दिला दिया, तब सुग्रीव अपने अंग-अंगद पुत्रों सहित पत्नि सुतारा को पाकर सुख से रहने लगा और उसने राम के लिए जो सीता माता को खोजने का वचन दिया था, वह भूल गया।

सीता की खोज – जैसे मुनिराज मुक्ति का ध्यान करते हैं, वैसे ही राम भी सदा सीता का ही ध्यान करते, सीता के सिवाय उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता। सीता को बारम्बार याद करके श्रीराम विचारते हैं –

''अरे, सुग्रीव को उसकी पत्नि मिल गई, परन्तु वह अबतक मेरी सीता का कोई समोचार नहीं लाया। लगता है स्वयं का दु:ख मिटते ही मेरा दु:ख भूल गया अथवा क्या सीता मर गई, जो वह मुझे कहने तक नहीं आया ?'' – ऐसे विचारों से श्रीराम विह्वल हो गये और उनकी आँखों में से आँसू ढ़लक पड़े।

श्रीराम की ऐसी दशा देखकर लक्ष्मण से नहीं रहा गया। उसने सुग्रीव को जाकर धमकाते हुए कहा – "रे दुष्ट ! मेरे भाई श्री राम दुःखी हैं और तू अपनी स्त्री के साथ मौज में पड़ गया। तू क्या सीता माता को खोजने का वचन भूल गया है ? अतः बनावटी सुग्रीव का जैसा हाल श्री राम ने किया, क्या मैं वैसा ही हाल तेरा करूँ ?"

तुरन्त ही सुग्रीव लक्ष्मण के चरणों में नतमस्तक हो गया और कहा – "हे देव ! मुझे क्षमा करो, मैं अपना वचन भूल गया; अब मैं कहीं से भी बहिन सीता का पता लगाकर शीघ्र आता हूँ।" – ऐसा कहकर, तुरन्त ही उसने देश-विदेश के विद्याधरों को आज्ञा दी – कि " माता सीता कहाँ है ? उनकी खोज शीघ्र करो। जंगल में, आकाश में, पाताल में, जम्बूद्वीप में, लवणसमुद्र में, मेरुपर्वत पर, ढाई द्वीप में सर्वत्र ढूँढकर जहाँ हो, वहाँ से बहिन सीता का पता लगाओ।"

– ऐसा कहकर सुग्रीव स्वयं भी आकाशमार्ग से सभी जगह खोजने गया। आकाश में जाते हुये सुग्रीव ने नीचे एक पर्वत पर घायल पड़े विद्याधर रत्नजटी को देखा। सुग्रीव ने उसके पास जाकर प्रेम से पूछा – "हे भाई रत्नजटी ! तुम्हारी विद्या कहाँ गयी ? तुम यहाँ धूल में क्यों पड़े हो ?" तब भयभीत रत्नजटी ने कहा – "हे स्वामी ! दुष्ट रावण माता सीता को हरकर ले जा रहा था, सीताजी रो रही थीं, उसे छुड़ाने के लिए मैंने रावण का विरोध किया, इससे रावण ने मुझे मारा और और समस्त विद्यायें छीन कर मेरा ये हाल कर दिया है।"

रत्नजटी के ये वचन सुनते ही हर्षित होकर सुग्रीव उसेअपने साथ लेकर राम के पास आये। रत्नजटी ने आकर राम-लक्ष्मण को प्रणाम करते हुए कहा – "हे स्वामी ! मैं माता सीता के भाई भामण्डल का सेवक हूँ, मैंने रावण को सीता माता का हरणकर ले जाते देखा है। महासती सीता माता रुदन करती थी। मैंने उसे रावण से छुड़ाने का बहुत

प्रयत्न किया, परन्तु कहाँ कैलाश को हिलाने वाला रावण और कहाँ मैं ? उसने मेरी विद्या छीनकर मेरा ये हाल कर दिया और सीता को लंका की ओर उड़ा ले गया।''

सीता की बात सुनते ही राम प्रसन्नता को प्राप्त हुये; विद्याधरों से वे पूछने लगे – ''यह लंका कहाँ है ? कितनी दूर है और रावण कौन है ? उसका बल कितना है ?''

राम का ये प्रश्न सुनते ही सभी विद्याधरों ने अपने मुख नीचे झुका लिए, कोई कुछ नहीं बोला, सभी के मुख पीले पड़ गये; तब राम समझ गये कि ये सभी रावण से बहुत डरते हैं।

पश्चात् विद्याधरों ने कहा – ''हे देव ! जिसका नाम लेने से हमको डर लगता है, हम उस रावण की क्या बात कहें ? रावण की ताकत की तो क्या बात कहें ? अब तो सीताजी हाथ से गईं ही समझें। सीता के वापिस मिलने की आशा रखना मौत को बुलाने जैसा है।''

लक्ष्मण ने क्रोधित होकर पूछा – ''आप लोग डर क्यों रहे हैं, रावण की लंका है कहाँ ? यह तो कहो। यदि रावण शूरवीर था, तो चोर की भांति सीता को क्यों ले गया ? एक बार मुझे उसका पता तो बताओ? फिर मैं उसका क्या हाल करता हूँ – यह देखना।''

तब विद्याधर बोले – ''हे लक्ष्मण ! इस जम्बूद्वीप के चारों तरफ लवण समुद्र है, उसके बीच राक्षस द्वीप है, उसके बीच ९ योजन ऊँचा और पचास योजन विस्तार वाला त्रिकुटाचल पर्वत है, उसके ऊपर देवपुरी जैसा अत्यंत मनोहर लंका नगर है, उसका राजा रावण महा बलवान है। उसके भाई कुंभकर्ण, विभीषण भी महाबलवान हैं। यद्यपि वे जिनधर्म के भक्त हैं, धर्मात्मा हैं; तथापि वे हैं तो रावण के भाई ही। इसके अलावा रावण के पास विशाल सेना एवं इन्द्रजीत आदि पुत्र हैं।

हे राम ! ऐसे महा-बलवान रावण को युद्ध में जीतना अशक्य है;

इसलिए हमारा तो यही निवेदन है कि आप सीता को भूलकर, सीता समान अन्य अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह कर सुख से रहें।''

तब राम कहते हैं – ''अरे, दूसरी सभी बातें छोड़ो ! सीता बिना मुझे दूसरी स्त्रियों से कोई प्रयोजन नहीं है।''

लक्ष्मण ने भी क्रोध पूर्वक कहा – ''हे विद्याधरो ! तुम इस दुष्ट रावण से डरो मत ! वह तो कायर है, कमजोर है, उसमें शूरवीरता कैसी? बस ! सीता माता का पता मिल गया तो अब समझो, सीता माता मिल ही गई। अब जल्दी लंका पहुँचने का उपाय करो।''

कोटिशिला प्रकरण – राम-लक्ष्मण का पराक्रम देखकर सुग्रीव का मंत्री जांबुनद ने विचार किया कि कदाचित् यह लक्ष्मण ही रावण को मारने वाला वासुदेव हो ! अतः उसने राम से कहा –

''हे स्वामी ! एकबार रावण ने नमस्कार करके अनंतवीर्य केवली से पूछा था कि मेरा मरण किससे होगा ? तब प्रभु की वाणी में ऐसा आया था कि जो जीव कोटिशिला को उठायेगा, उसके हाथ तेरी मृत्यु होगी।''

ये बात सुनते ही लक्ष्मण ने कहा – ''कहाँ है वह कोटिशिला? चलो, मैं उसे उठाता हूँ !''

लक्ष्मण का जोश देखकर सभी विद्याधरों के विमान में बैठकर शीघ्रता से कोटिशिला (निर्वाणशिला) के पास पहँच गये। 'इस पावन शिला पर से अनेक जीव सिद्ध हुए हैं' – ऐसा स्मरण करके लक्ष्मण ने उन सिद्ध भगवंतों को नमस्कार किया और शिला की तीन प्रदक्षिणा दीं। लक्ष्मण ने पंचपरमेष्ठी को याद करके सिद्धों की इसप्रकार स्तुति की –

''अहो भगवंतो ! आप तीन लोक के शिखर पर चैतन्य की अतीन्द्रिय सत्ता से शोभ रहे हो। आप संसार से पार, आनन्द के पिंड, पुरुषाकार, अमूर्त तथा एक समय में सबको जानने वाले हो; राग-द्वेष से रहित आप मुक्त हो। आपके भाव सम्पूर्णतः शुद्ध हैं। इस ढाई-द्वीप

से अनंत जीव सिद्ध हुए हैं और अनन्तजीव सिद्ध होंगे। मंगल स्वरूप ऐसे सभी सिद्ध भगवान मेरा कल्याण करें।''

इसप्रकार स्तुति करके लक्ष्मण ने कोटिशिला को घुटनों पर्यंत ऊँची उठाई। देवों ने जय जयकार किया। विद्याधर लक्ष्मण की ताकत देखकर आश्चर्य चकित हुए। तब विद्याधर राजा समझ गये कि अब थोड़े ही समय में तीन खण्ड में राम-लक्ष्मण का राज्य होगा; इसलिए सभी उनकी सेवा करने लगे और सीता को वापिस लाने के लिए क्या करना चाहिये – ये विचारने लगे।

इसप्रकार कोटिशिला की यात्रा करके, उन सभी ने भरतक्षेत्र के सभी तीर्थों की एवं सम्मेदशिखर, कैलाश पर्वत आदि सिद्धक्षेत्रों यात्रा-वंदना की।

तब राम ने कहा – ''हे राजाओ ! अब किस बात के लिए ढ़ील कर रहे हो ? मेरे विरह में सीता अकेली लंका में महादु:खी हो रही होगी; इसलिए जल्दी उपाय करो और रावण से सीता को वापस लाने के लिए लंका की ओर शीघ्र कूच करो, यदि जरूरत पड़ी तो हम इसके लिए युद्ध से पीछे नहीं हटेंगे।''

रावण के पास दूत भेजने कर निर्णय – सुग्रीव के मंत्रियों ने श्रीराम से निवेदन किया – ''हे देव ! अपने को तो सीता माता मिल जाये – ये प्रयोजन है, युद्ध का प्रयोजन नहीं। तीन खंड का राजा रावण महाबलवान है, इसलिए युद्ध के बिना ही सीताजी वापिस मिल जायें – ऐसा कुछ उपाय करना चाहिए। रावण का भाई विभीषण श्रावक व्रत का धारक धर्मात्मा है, दोनों भाईयों में अतिप्रेम है, उसका वचन रावण नहीं टाल सकता, उसके कहने से वह अवश्य सीता माता को वापिस सौंप देगा। इसलिए हमें कुशल दूत को लंका भेजना चाहिए, परन्तु लंका का मायामयी कोट अलंघ्य है। महाशक्तिशाली हनुमान के अलावा

दूसरा तो वहाँ जा ही नहीं सकता और हनुमानजी तो रावण के परममित्र भी हैं, वे भी उसे समझायेंगे, इसलिए उन्हें ही लंका भेजना चाहिए।''

– ऐसा निर्णय होते ही तुरन्त हनुमानजी को बुलाने हेतु दूत भेजा गया। दूत श्रीपुर नगर पहुँचा, वहाँ नगरी की शोभा देखते ही वह आश्चर्य चकित हो गया। दूत ने राजमहल में आकर हनुमान और अनंगकुसुमा को सभी बात बताई। अनंगकुसुमा रावण की भानजी थी। उसके पिता और भाई को (खरदूषण और शंबूक को) लक्ष्मण ने मारा है – ये सुनते ही वह मूर्छित हो गई और हनुमान को भी लक्ष्मण पर क्रोध आया; परन्तु दूत ने उसे शांत करके सभी बात बताई कि – किसप्रकार सुग्रीव का संकट दूर करके उनका राज्य तथा उनकी पत्नि सुतारा श्री राम-लक्ष्मण ने वापिस दिलाई है। – ये सुनकर हनुमान प्रसन्न हुए। खरदूषण के समान सुग्रीव भी हनुमान के ससुर हैं।

अहो ! संसार का भी कैसा विचित्र स्वरूप है कि एक ससुर को लक्ष्मण ने मारा है, दूसरे ससुर को राम ने बचाया है। वे विचारने लगे– ''**वास्तव में कौन किसको बचाये और कौन किसको मारे, सत्य तो यह है कि सभी अपने-अपने कर्मों का ही फल भोगते हैं।**''

तब हनुमान ने कहा – ''सुग्रीवजी का दु:ख मिटाकर राम ने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है। इसप्रकार हनुमान ने परोक्षपने राम की बहुत प्रशंसा की। सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा भी 'पिता का दु:ख मिट गया' – यह जानकर हर्षित हुई।''एक ही राजा की दो रानियाँ ! उसमें एक रानी के यहाँ पिता के मरण का और दूसरी रानी के यहाँ पिता की विजय का उत्सव ! कैसा विचित्र है संसार ! **ऐसे संसार के बीच रहते हुए भी अपने चरित्र नायक श्रीराम एवं उपनायक श्री हनुमान की ज्ञानचेतना अलिप्त ही रहती है.... वे मोक्ष के लक्ष्य को कभी भूलते नहीं। धन्य हैं, ये चरमशरीरी धर्मात्मा !**

श्री राम और हनुमान का मिलन – हनुमान राम की सहायता के लिए तुरंत किष्किंधापुर चल दिए, अन्य कितने ही विद्याधर राजा भी हनुमान के साथ बड़ी सेना लेकर आकाशमार्ग से साथ चल रहे थे। हनुमान के विमान की ध्वजा में बन्दर का चिह्न शोभा पा रहा था।

राजा सुग्रीव ने पूरी नगरी सजा कर हनुमान का स्वागत किया। हनुमान श्रीराम के पास पहुँचे। एक चरमशरीरी जीव के पास दूसरे चरमशरीरी धर्मात्मा पहुँचे हैं....राम और हनुमान का प्रथमबार मिलन हुआ....दोनों साधर्मी एक-दूसरे को देखकर परम प्रसन्न हुए। श्रीराम की गंभीर मुद्रा और अद्भुत रूप देखकर पवनपुत्र का चित्त प्रसन्नता से नम्रीभूत हो गया। श्रीराम भी हनुमान को देखते ही प्रसन्नता से उनके पास आकर मिले....।

''अहो, राम और हनुमान जैसे दो मोक्षमार्गी महापुरुष जब एक-दूसरे से मिलते होंगे, तब कैसा अद्भुत दृश्य होगा वह ! वाह रे वाह जैनधर्म ! तेरा साधर्मी वात्सल्य जगत में अजोड़ है। **सच्चा सम्बन्ध साधर्मी का।**''

सीता के विरह में उदास होने पर भी जिसका पुण्य-प्रताप छिपा रह नहीं सकता – ऐसे श्रीराम का प्रताप देखकर आश्चर्य से हनुमान कहने लगे – ''हे देव ! किसी की प्रशंसा करना हो तो परोक्ष में करना चाहिये, प्रत्यक्ष में नहीं करना चाहिये – ऐसा व्यवहार है; परन्तु आपके गुणों की जो महिमा हमने सुनी थी, उससे भी अधिक गुण आज प्रत्यक्ष देखे। आपने हमारे ऊपर बड़ा उपकार किया है। हम आपकी क्या सेवा करें? उपकार करनेवालों की सेवा जो नहीं करते, **जो उपकार भूल कर कृतघ्नी होते हैं, वे दुर्बुद्धि जीव न्याय से विमुख हैं; उनके भावों में शुद्धता नहीं होती।**

इसलिए हे राघव ! आप चिन्ता छोड़ो, अब थोड़े ही समय में आप

सीता का मुख देखेंगे। मैं अभी लंका जाता हूँ और शीघ्र ही सीता का संदेश लेकर आता हूँ।''

तब श्रीराम ने अत्यंत प्रीति से एकांत में हनुमान से कहा –

''हे वायुपुत्र ! तुम हमारे परममित्र हो, सीता को कहना कि – हे महासती ! तेरे वियोग में राम को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता; तुम महा-शीलवंती सती धर्मात्मा अभी परवश में हो, परन्तु धैर्य रखना; वियोग में कहीं तुम प्राण नहीं छोड़ देना। आर्तध्यान न करके जैनधर्म की ही शरण रखना। पूर्व के पुण्य-पाप के अनुसार संयोग-वियोग तो होते ही हैं। तुम तो जैनधर्म को जाननेवाली हो, अत: आत्मभावना भाना। हम जल्दी से आकर तुम्हें रावण की कैद से छुड़ा लेंगे।'' – इसप्रकार हनुमान से बात करते हुए राम ने भावुक हृदय से अपनी अंगूठी निकाल कर हनुमान को देते हुए कहा कि यह मुद्रिका सीता को देते हुए कहना कि राम तुम्हारे इन्तजार में ही जी रहे हैं।

हनुमान ने कहा – ''हे देव ! आपकी आज्ञा के अनुसार मैं सीता माता को कहूँगा और उनका संदेश लेकर शीघ्र ही वापिस आऊँगा; तबतक आप भी धैर्य रखना।''

– इसप्रकार कहकर श्री हनुमान ने श्रीराम से विदाई ली और पंच परमेष्ठी के स्मरण पूर्वक आकाशमार्ग से प्रयाण किया। श्रीराम आकाशमार्ग से जाते हुए हनुमान को तबतक देखते रहे, जबतक कि वे दृष्टि से ओझल नहीं हो गये।

हनुमान का लंका-प्रयाण – हनुमान आकाशमार्ग से लंका की तरफ जा रहे हैं, उनका चित्त बड़ा प्रसन्न है, वे सोच रहे हैं कि –

''वाह ! श्रीराम और सीता माता जैसे साधर्मी धर्मात्माओं की सहायता करने का ये अवसर मिला है। साधर्मी के ऊपर संकट कैसे देखा

जा सकता है ? मैं शीघ्र ही ये संकट दूर कर राम-सीता का मिलन कराऊँगा।''

– इसप्रकार सीता के दर्शन के लिए जिनका चित्त उत्सुक है, ऐसे हनुमान पवन से भी अधिक वेग से जा रहे हैं....अहो ! ऐसा लगता है कि अपनी जानकी बहन को लेने के लिए मानो भाई भामण्डल ही जा रहा हो !

बीच में एक अद्भुत घटना – दधिमुख नगरी के बाहर एक घोर वन में दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आठ दिन से ध्यान में खड़े थे। उसी वन में थोड़ी दूर पर तीन राजकुमारियाँ। मनोऽनुगामिनि विद्या साध रही थीं, उन्हें आज बारहवाँ दिन था। **मोक्षमार्ग में जैसे वीतरागी तीन रत्न शोभित होते हैं, वैसे ही निर्मल चरित्रवाली ये तीन कन्यायें वन में सुशोभित हो रही थीं।**

अंगारक नाम का दुष्ट विद्याधर उन कन्याओं पर मोहित होकर उनके साथ विवाह करना चाहता था, परन्तु राजकन्याओं के मन में तो श्रीराम ही बस रहे थे। अंगारक विद्याधर ने कन्याओं को वश करने हेतु क्रोधपूर्वक वन में आग लगा दी। वन में ध्यानस्थ खड़े दो मुनियों एवं तीन कन्याओं के ऊपर अग्नि का घोर उपसर्ग हुआ, परन्तु उपसर्ग के बीच भी मुनिराज डिगे नहीं और न डिगीं राजकन्यायें। सब अपनी-अपनी साधना में मस्त थे।

इतने में ऊपर से हनुमान निकले, मुनियों को आग में फँसे हुये देखकर तुरन्त ही हनुमान नीचे उतरे; विद्या के बल से उन्होंने घनघोर पानी की वर्षा की। **जैसे मुनिराज परम क्षमा द्वारा क्रोधाग्नि को बुझाते हैं, वैसे ही मुनिभक्त हनुमान ने वन की आग बुझा डाली।**

इस तरह मुनिवरों का उपसर्ग दूर करके हनुमान उनकी पूजा-स्तुति कर रहे थे। उसी समय तीनों राजकन्यायें वहाँ आ पहुँची और कहने लगीं–

"हे तात् ! आपने हमें इस वन की आग से बचाकर बड़ा उपकार किया। हम लोग यहाँ श्रीराम के दर्शनों की इच्छा से विद्या साधते थे, जिसकी सिद्धि में बारह वर्ष से भी अधिक समय लगता, परन्तु ऐसे उपसर्ग के बीच भी हम निर्भय रहे, इससे वह विद्या हमको आज १२वें दिन ही सिद्ध हो गई। **हमारे निमित्त से मुनिराज पर उपसर्ग हुआ, परन्तु मुनिराज के प्रताप से हमारी भी रक्षा हो गई। अहो बंधु ! तुम्हारी जिनभक्ति और मुनिभक्ति वास्तव में अद्‌भुत है।**"

हनुमान ने उन कन्याओं को श्रीराम का परिचय दिया तथा कहा– "अब तुम्हें श्रीराम के दर्शन होंगे और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा; **निश्चयवंत जीव को उद्यम द्वारा स्वकार्य की सिद्धि होती ही है।**" – ऐसा कहकर हनुमान वहाँ से चल दिये।

हनुमान को लंका सुन्दरी की प्राप्ति – अब लवणसमुद्र के

बीच स्थित त्रिकुटाचल पर्वत (जिस पर रावण की लंका नगरी है) पर हनुमान आ पहुँचे। वहाँ रावण के मायामयी यंत्र के कारण हनुमान का विमान वहीं रुक गया। यहाँ हनुमान विचार में पड़ गये – "अरे, ये क्या हुआ ? विमान आगे क्यों नहीं चलता ? क्या नीचे कोई चरमशरीरी मुनिराज विराजमान हैं ? या कोई भव्य जिनमन्दिर है ? या फिर किसी शत्रु ने विमान रोका है ?"

पृथुमति नामक उनके मंत्री ने बताया कि "हे देव ! यन्त्रों से युक्त ये तो लंका का मायामयी कोट है; ये माया की पुतली सर्वभक्षी है, उसके मुख में प्रवेश करनेवाला व्यक्ति कभी बाहर निकल नहीं सकता। चारों ओर हजारों फणधर सर्प मुँह फाड़-फाड़कर फण ऊँचा कर-करके भयंकर फुंकार रहे हैं, ऊपर से विष समान अग्नि के फुलिंगों की बरसात हो रही है। दुष्ट मायाचारी रावण की विद्या के बल द्वारा रचा हुआ यह लंका के चारों तरफ मायामयी कोट मानो सूर्य-चन्द्र से भी ऊँचा है; इसमें प्रवेश करना, वह मानो अपनी मौत को ही बुलाना है।"

हनुमान ने कहा – "**जैसे मुनिवर आत्मध्यान द्वारा माया को नष्ट कर डालते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी विद्या द्वारा रावण की इस माया को उखाड़ कर फेंक दूँगा।**" – ऐसा कहकर, हनुमान ने सेना को तो आकाश में ही खड़े रखा और स्वयं मायामयी पुतली के मुँह में प्रवेश कर विद्या द्वारा उसका विदारण कर डाला। **जैसे मुनीश्वर शुक्ल ध्यान के प्रहार द्वारा घनघाति कर्म को भी तोड़ डालते हैं, वैसे ही हनुमान ने गदा के प्रहार द्वारा रावण का गढ़ तोड़ डाला।**

जैसे जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते ही पाप भाग जाते हैं, वैसे ही हनुमान को देखते ही राक्षस भाग गये। हनुमान के चक्र द्वारा कोटपाल का मरण हुआ; इस कारण उसकी पुत्री लंका सुन्दरी अत्यंत क्रोधपूर्वक लड़ने आ गई। अनेक प्रकार की विद्याओं द्वारा दोनों में बहुत

समय तक लड़ाई चली। अद्भुत रूप से गर्वित उस लंका सुन्दरी को कोई जीत नहीं सकता था। वह हनुमान के ऊपर जोरदार बाण चलाने लगी, परन्तु अचानक इस कामदेव का अद्भुत रूप देखकर वह लंका सुन्दरी ऐसी मूर्छित हुई कि स्वयं ही कामबाण से घायल हो गई। विह्वल हो उसने बाण के साथ प्रेम की चिट्ठी बाँधकर उसे हनुमान के चरणों में फेंका, मानो बाण के बहाने वह ही हनुमान की शरण में ही गई.... हनुमान का हृदय भी उस पत्ररूपी बाण से छिद गया। इसप्रकार पुष्पबाण द्वारा ही दोनों ने एक-दूसरे को वश कर लिया।

अरे, संसारी जीवों की विचित्रता तो देखो ! क्षण में वीररस, क्षण में एक-दूसरे को मार डालने का तीव्र द्वेष और क्षण में उसके ही ऊपर अत्यंत **प्रेम अर्थात् रौद्रपरिणाम** ? – ऐसे क्रोध, शांत, शोक, हर्ष अनेक परिणामों में जीव प्रतिक्षण वर्तता है; **उसमें वीतरागी शांतरस यही सच्चा रस है, बाकी के सभी रस नीरस हैं....अरस आत्मा का शांतरस चखनेवाले धर्मात्मा ने सारे संसार को नीरस जाना है।**

हनुमान ने लंका सुन्दरी को वश करके लंका की तरफ जाने की तैयारी की, तब लंका सुन्दरी ने बताया – "हे स्वामी ! आप संभल कर जाना; रावण को अब आप पर पहले जैसा स्नेह नहीं रहा। पहले तो आप लंका आते थे, तब पूरा नगर सजाकर आपका स्वागत करते थे; परन्तु अब रावण आप पर नाराज है, इससे वह आपको पकड़ लेगा.... इसलिए सावधान रहना।" **देखो, उदय की विचित्रता ! जो लंका सुन्दरी कुछ क्षण पहले रावण की सेविका थी, अब वही उसके विनाश का कारण बन रही है।**

हनुमान ने कहा – "हे देवी ! मैं जाकर उसका अभिप्राय जानूँगा। मुझे जगत प्रसिद्ध सती सीता के दर्शन की भावना जगी है। अरे, रावण जिसका मन सुमेरु पर्वत के समान अचल था, वह भी जिसका रूप

देखकर चलित हो गया, वह सती सीता मेरी माता के समान है, उसे मैं देखना चाहता हूँ।'' – ऐसा कहकर हनुमान ने शीघ्र लंकानगरी में प्रवेश किया।

हनुमान-विभीषण संवाद – वहाँ हनुमान सबसे पहले विभीषण के पास गये, विभीषण ने उनका सन्मान किया। तब हनुमान ने कहा–

''हे पूज्य ! आप तो धर्मात्मा हो, जिनधर्म के जानकार हो; आपका भाई रावण आधे भरतक्षेत्र का स्वामी है, वह इसतरह अन्य की स्त्री चुराकर लाये – यह क्या उचित है ? राजा होकर ऐसा अन्याय उसे शोभा नहीं देता। आपके वंश में अनेक महापुरुष मोक्षगामी हुए हैं, उनकी उज्ज्वल कीर्ति में ऐसा कार्य करने से अपयश होगा, इसलिए आप रावण को समझाओ कि सीता को वापिस सौंप दे ?''

तब विभीषण कहते हैं – ''बेटा हनुमान ! मैंने अपने भाई को बहुत समझाया, परन्तु वह मानता नहीं। वह सीताजी को जब से लाया है, तब से मेरे से बोलता भी नहीं है, फिर भी मैं उसे जोर देकर पुन: समझाऊँगा। मुझे भी इस बात का बहुत दु:ख है। सीता जब से यहाँ आई है, तब से वह निराहार है। आज ११ दिन हो गये, उसने कुछ भी खाया नहीं। अरे, वह तो पानी भी नहीं पीती; फिर भी विषयांध रावण को दया नहीं आती, उदास सीता प्रमद नाम के वन में अकेली बैठी-बैठी जिनेश्वर देव और राम के नाम का जाप जपकर समय काट रही है।''

हनुमान का सीता से मिलन – यह सुनते ही हनुमान का कोमल हृदय दया से भर गया; तुरंत ही वह प्रमद नाम के वन में गया, जहाँ सीता माता विराजी थीं, वहाँ आने पर **जैसे जिनवाणी को पाकर भव्यजीव प्रसन्न होते हैं, वैसे ही सीता के दर्शन से हनुमान प्रसन्न हुये।** शांतमूर्ति सीता उदासचित्त मुँह से हाथ लगाकर बैठी हैं, बाल बिखरे हुए हैं, आँखें

आँसुओं से भरी हैं, शरीर सूख गया है, दुःख में डूबी होने पर भी आत्मतेज से उसकी मुद्रा चमक रही है; उसे देखते ही हनुमान मन ही मन सोचने लगे–

"धन्य माता ! धन्य सीता ! इनके समान दूसरी कोई नारी नहीं, इनका संकट मेरे से देखा नहीं जाता। मैं जल्दी ही इनको यहाँ से छुड़ाकर श्रीराम से मिलाऊँगा।"

जीवन में हनुमान ने सम्यग्दर्शन की धारक महासती सीता माता को प्रथम बार ही देखा था – धर्मात्मा को देखकर उसके अन्तर में वात्सल्य का भाव जागृत हुआ....सीता की एकाकी दशा देखकर वैराग्य भी हुआ। हनुमान विचारते हैं –

"अरेरे ! रामचन्द्र जैसे महापुरुष की पटरानी अभी यहाँ लंका के वन में अकेली बैठी है...भले ही अकेली...परन्तु उसकी आत्मानुभूति तो उसके साथ है ना ! **अहा, चैतन्य की अनुभूति के समान जीव का साथीदार दूसरा कौन है....कि जो मोक्षपर्यंत साथ दे** !! जीव को दु:ख में या सुख में, संसार में या मोक्ष में दूसरा कोई साथीदार नहीं। जैसे अपने एकत्व स्वरूप में परिणमते मुनि वन में अकेले शोभा पाते हैं, वैसे ही सीताजी भी अकेली अर्जिका जैसी इस वन में सुशाोभित हो रही हैं – ये वन भी सीता के प्रताप से ही प्रफुल्लित लगता है।"

क्षणभर ऐसा विचार कर हनुमान ने रामचन्द्रजी की अंगूठी ऊपर से सीता की गोद में डाली। अचानक राम की मुद्रिका देखते ही सीताजी तो आश्चर्यचकित हो गई।

"अरे, ये अँगूठी कहाँ से ? जरूर कोई सत्पुरुष मेरे स्वामी का संदेशा लेकर यहाँ आ पहुँचा है।" – ऐसे विचार से सीता के मुख पर प्रसन्नता छा गई। हमेशा उदास रहती सीता को एकाएक प्रसन्न देखकर रावण की दूतियाँ एकदम खुश होकर रावण के पास जाकर कहने लगीं– "हे देव ! आज सीता प्रसन्न हो गई है।"

रावण ने उन स्त्रियों को बहुत इनाम दिया; उसने तुरन्त ही मंदोदरी आदि रानियों को सीता के पास भेजा।

तब मंदोदरी सीता के पास आकर कहने लगी – "हे बाला ! तू आज प्रसन्न हुई ये अच्छा हुआ। अब तू रावण को अपना स्वामी अंगीकार कर और उसके साथ इन्द्राणी जैसा सुख भोग।"

यह सुनते ही सीता ने क्रोध से कहा – "अरी पगली ! ये तू क्या बकती है ? तू अपनी बकवास बंद कर ! मैं कहीं रावण के ऊपर प्रसन्न नहीं हुई हूँ; आज तो मेरे स्वामी का समाचार आया है, मेरे स्वामी कुशल हैं – ये जान कर मुझे हर्ष हुआ है।"

श्री राम का संदेश पा ज्यों हर्ष पावे जानकी।
जिनदेव के दर्शन को पा भव्यात्मा हो त्यों सुखी।।
कलिकाल में जिनका, दरश वश सुक्ख का आधार है।
जिनका दरश पा निज दरश कर होय भव से पार है।।

तब मंदोदरी ने कहा – "अरे सीता ! यहाँ लंका में राम का समाचार कैसा ? मुझे लगता है कि तू ११ दिन से भूखी है – इससे तुझे वायु का प्रकोप हो गया है, इसलिए तू ऐसा बोलती है।"

सीता ने हाथ में राम की अंगूठी लेकर पुकार लगायी –

"हे भाई ! मैं सीता इस लंका के भयानक वन में पड़ी हूँ, महा वात्सल्यधारक मेरे भाई समान तुम जो कोई उत्तम जीव मेरे स्वामी की मुद्रिका लेकर यहाँ आये हो, मुझे प्रगट दर्शन देने की कृपा करो।"

बस फिर क्या था, अगले ही क्षण आ पहुँचे –

सीता के भाई हनुमान !

हनुमान साक्षात् प्रगट हुए और सन्मुख आकर सीता को नमस्कार किया। अहा, सीता के धर्म-भाई आये ! जैसे भाई भामण्डल सीता के

पास आये, वैसे ही हनुमान सीता के समीप आये, मानो भाई! अपनी प्यारी बहन को लेने ही आया हो ? यह निर्दोष भाई-बहन का मिलन मंदोदरी भी आश्चर्य से देख रही थी। महाप्रतापी वज्रअंगधारी हनुमान निर्भयता से सीता के सन्मुख खड़े हैं।

प्रथम हनुमान ने अपना परिचय दिया – ''मैं रामचन्द्रजी का सेवक, अंजना-पवनंजय का पुत्र हनुमान, सीता माता को नमस्कार करता हूँ। श्रीराम ने मुझे यहाँ भेजा है।

हे माता ! राम-लक्ष्मण कुशल हैं, स्वर्ग जैसे महल में रहते हैं, परन्तु तुम्हारे विरह में उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ती। **जैसे मुनिराज दिन-रात आत्मा को ध्याते हैं, वैसे ही राम दिन-रात तुम्हारा ध्यान करते हैं** और तुम्हारे मिलने की आशा से ही जी रहे हैं।''

हनुमानजी से कुशल समाचार की बातें सुनकर सीता आनन्दित हुई और बोली – ''हे भाई ! आपने ऐसे उत्तम समाचार मुझे दिये, इससे मुझे अत्यन्त खुशी हुई है; परन्तु अभी मेरे पास ऐसा कुछ नहीं कि मैं तुम्हें पुरस्कृत कर सकूँ !''

तब हनुमान ने कहा – ''हे पूज्य माता ! आपके दर्शन से ही मुझे महान लाभ हुआ है। तुम्हारे जैसी उत्तम धर्मबहिन मिली, इससे उत्तम उपहार दूसरा क्या है ?''

सीता ने सभी कुछ पूछा – ''हे भाई ! चारों ओर समुद्र से घिरी हुई इस लंका नगरी में तुम किसप्रकार आये ! क्या वास्तव में तुमने श्रीराम एवं लक्ष्मण भैया को देखा है ? तुम्हारी उनके साथ मित्रता किसप्रकार हुई। कदाचित् मेरे वियोग में राम ने देह छोड़ा हो और उनकी अंगूठी पड़ी रह गई हो....वह लेकर तुम आये हो और ऐसा तो नहीं है कि मुझे रिझाने के लिए ये रावण का ही कोई मायाजाल हो।'' – इस तरह शंका-आशंका करके सीता अनेक प्रश्न पूछने लगी।

तब हनुमान ने सीता से अन्य सभी बातें कीं। जटायुपक्षी की बात बतायी, रत्नजटी विद्याधर की बात बतायी, इसतरह सर्वप्रकार से सीता को विश्वास उत्पन्न कराया और कहा –

''हे बहिन ! तुम मुझे अपना भाई ही समझो, तुम धैर्य रखना, लंका का राजा रावण सत्यवादी है, दयावान है, मैं उसे समझाऊँगा, वह मेरा वचन मानकर तुम्हें शीघ्र राम के पास वापस भेज देगा अथवा राम-लक्ष्मण स्वयं आकर रावण को मारकर तुम्हें ले जायेंगे।

ये सब सुनकर मंदोदरी कहने लगी – ''अरे हनुमान ! तू तो हमारा भानजा जमाई है, लंका का राजा तुझे अपने भाई समान गिनता है। अनेक बार तुमने युद्ध जिताने में उनकी मदद की है। तू आकाशगामी विद्याधर होते हुए भी भूमि-गोचरी राम का दूत बनकर आया है ? रावण का पक्ष छोड़कर तूने राम का पक्ष लिया – ये तुझे क्या हो गया ?''

तब हनुमान कहते हैं – ''अरे माता ! तू राजा मय की पुत्री, महासती और रावण की पटरानी; फिर भी ऐसे दुष्ट कार्य में रावण की दूती बनकर आई है – ये तुझे शोभा नहीं देता। ऐसे पापकार्य से रावण को रोकने के बदले तू उल्टे उसकी अनुमोदना एवं सहयोग करती है, तेरा स्वामी विषयरूपी विष-भक्षण से मरण-सन्मुख जा रहा है, उसे तू क्यों नहीं रोकती ? क्या ऐसा अकार्य तुझे शोभा देता है ? तू राजा रावण की 'महिषी' (पटरानी) है, या सचमुच 'महिषी' (भैंस) है ?''

अपना अपमान होने से मंदोदरी क्रोध में आकर कहने लगी – ''अरे हनुमान ! तुम तो अभी बालक हो और राम के दूत बनकर आये हो – यदि ये बात लंकापति जान लेगें तो तुझे मार डालेंगे, इसलिए वन में भटकने वाले राम की सेवा छोड़कर तू लंकापति की सेवा कर।''

तब सीता कहने लगी – ''अरी दुष्टा ! तेरा पति पापी है, उसका मरण अब निकट आया है, मेरे राम-लक्ष्मण के अद्‌भुत पराक्रम की अभी

तुझे खबर नहीं। जब समुद्र उलांघकर वे यहाँ आयेंगे, तेरे पति को मार डालेंगे तब तू विधवा हो जायेगी।''

–ऐसे अनिष्ट वचन सुनते ही मंदोदरी आदि समागत रानियाँ सीता को मारने दौड़ीं, परन्तु वीर हनुमान ने बीच में आकर उन सबको भगा दिया। **जैसे वैद्य रोग को दूर करता है, वैसे ही वीर हनुमान ने उन रानियों को भगाकर सीता का भय दूर किया।** उन रानियों के भाग जाने के बाद हनुमान ने सीता से विनती की – ''हे बहन सीता! अब तुम आहार-जल ग्रहण करो – ये सम्पूर्ण पृथ्वी राम की ही है – ऐसा समझो। राम के कुशल समाचार सुनने की तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो गई है, इसलिए हे बहन ! अब तुम भोजन करो; अपने हाथों से ही मैं तुम्हें पारणा कराऊँगा।''

हनुमान द्वारा सीता का पारणा – विचक्षण बुद्धि महासती सीता ने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी हुई जानकर भोजन के लिए 'हाँ' कर दी....थोड़ी देर में ही सोने की थाली में शुद्ध भोजन आ गया।

देवी सीता द्वारा समीपवर्ती साधर्मियों को परोक्षरूप से निमंत्रण दिया गया, हनुमान के प्रति भाई जैसी प्रीति की, पंच परमेष्ठी के स्मरण पूर्वक मुनिराजों को आहार दान देने की भावना

सहित, श्री राम का हृदय में चिंतन कर सीता भोजन लेने बैठी। हनुमान ने पास में ही बैठकर अत्यंत वात्सल्य भाव से सीता को भोजन कराया.... अहा, लंका नगरी में ११ दिन की उपवासी बहिन सीता को आज उसका धर्म-भाई प्रेम से भोजन करा रहा है। बहिन को भोजन कराने से हनुमान के हर्ष का पार नहीं। सीता ने भी भाई समान हनुमान को भी वहाँ पर भोजन कराया....

वाह रे वाह ! धर्म वात्सल्यवान साधर्मी धर्मात्मा का प्रेम, वाह रे वाह !! धर्म का वात्सल्य !!!

भोजन करने के बाद भाई-बहिन ने उत्तम तत्त्वचर्चा की। स्वानुभूति वाले दोनों भाई-बहिन द्वारा की गई चैतन्यतत्त्व की चर्चा अद्भुत थी।

हनुमान –''बहिन सीता ! पूर्व में किन्हीं मुनिराज का तुमने अवर्णवाद किया होगा, इसी कारण ऐसा संकट तुम्हारे ऊपर आया; परन्तु अब जैनशासन के प्रताप से तुम्हारा संकट दूर होगा, क्योंकि देव-शास्त्र-गुरु की अपार भक्ति तुम्हारे जीवन में भरी है।''

सीता – ''हाँ भाई, जिनके प्रताप से आत्मा ने स्वानुभूति पायी, उनके उपकार की क्या बात ? संसार की कैसी भी विकट परिस्थितियों में भी स्वानुभूति के प्रताप से जीव को शांति रहती है।''

हनुमान – ''वाह बहिन ! तुम ऐसी स्वानुभूति से शोभा पा रही हो, तुम्हारे मुख से स्वानुभूति की चर्चा सुनकर मुझे बहुत हर्ष होता है।''

सीता – ''भाई, इस विकट वन में तुम मुझे साधर्मी भाई के रूप में मिले। तुम चैतन्य की स्वानुभूति युक्त हो, मैं तुमसे मिलकर अपने को धन्य मानती हूँ।''

हनुमान – ''अरे, रावण जैसा राजा जैनधर्म का जानकार भी अभी विषयांध विवेकशून्य होकर दुष्ट कार्य में वर्त रहा है !''

सीता – ''वास्तव में जीव का स्वभाव कोई अलौकिक है; जब वह जागृत होता है, तब परभावों को तोड़कर मोक्ष साधने में देर नहीं लगती।''

पाठको ! **सीता और हनुमान की ये चर्चा सुनकर हमें रावण के ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए, धीरज से अपने ज्ञान को दीर्घदृष्टि प्रदान कर उनके स्वभाव एवं आगामी काल में होनेवाली पूर्ण शुद्ध पर्याय पर दृष्टि डालनी चाहिए।** भविष्य में जब सीता का जीव चक्रवर्ती होगा तब यही रावण का जीव उसका पुत्र होगा और लक्ष्मण का जीव रावण का भाई होगा अर्थात् सीता का दूसरा पुत्र होगा अब और जरा ज्ञान को आगे ले जाकर देखें तो वही रावण का जीव जब तीर्थंकर होगा, तब सीता का जीव उनका गणधर होगा।

बोलो, अब तुम किस पर द्वेष करोगे ? **जैसे रावण का जीव कुशीलादि रूप विराधना के भावों को छोड़कर आराधना के भाव प्राप्त कर मोक्ष पायेगा, वैसे ही तुम भी आत्मा की आराधना में लगकर मोक्ष पथ में प्रयाण करो।**

इस तरह सीता के साथ चर्चा के बाद हनुमान जाने के लिये तैयार हुए और सीता से कहा – ''हे देवी ! चलो हमारे साथ, तुम्हें श्री राम के पास ले चलूँ।'' परन्तु सीता ने कहा –

''रावण तो कायरों की तरह चोरी से मुझे उठाकर लाया था, परन्तु हे वीर ! राम-लक्ष्मण तो स्वयं के पराक्रम से रावण को हरा कर मुझे ले जायेंगे, इसलिए चोरी से छिपकर भागना उचित नहीं। भाई ! तुम जाकर राम को मेरे सब समाचार सुनाना और कहना कि मुझे लेने जल्दी आवें और तुम अपनी माता अंजना को मेरी तरफ से योग्य विनय कहना।'' ''हे हनुमान ! तुमने यहाँ आकर मेरे ऊपर भाईवत् उपकार किया है। वन में हमने गुप्ति-सुगुप्ति आदि मुनिराजों को आहार दिया था,

देशभूषण-कुलभूषण मुनिवरों का उपसर्ग निवारण करके भक्ति की थी – ये सभी प्रसंगों को याद करके राम को मेरा कुशल-समाचार कहना और मेरी ये निशानी भी राम को देना....''

– ऐसा कहकर भावुक होती हुई सीता ने सिर का चूड़ामणि उतारकर हनुमान के हाथ में देते हुए कहा – ''भाई हनुमान ! अब तुम जल्दी यहाँ से विदाई लो; क्योंकि वहाँ राम राह देखते होंगे और यहाँ रावण को खबर पड़ते ही वह तुम्हें पकड़ने का उद्यम करेगा, इसलिए अब विलम्ब करना उचित नहीं....।''

''हे माता ! राम-लक्ष्मण सहित हम शीघ्र ही यहाँ आकर आपको छुड़ायेंगे; तुम धैर्य रखना, अपने को तो सदा पंच परमेष्ठी का शरण है।'' – इसप्रकार हनुमान ने सीता को धैर्य बँधाकर वहाँ से विदाई ली।

राम की अँगूठी सीता ने अपनी अंगुली में पहनी, उस अंगूठी के स्पर्श से उसे राम के साक्षात् मिलन जैसा ही सुख हुआ, **जैसे सम्यक्त्व के स्पर्श से भव्यजीव को मोक्ष जैसा सुख होता है।**

सीता के मिलन से हनुमान को अपने जीवन में एक महान कार्य करने का सन्तोष हुआ। अहो, संकट में पड़े हुए साधर्मी की सहायता के लिए कुदरत ही जब तैयार हो, तब धर्मात्मा से कैसे रहा जा सकता है ? संकट के समय एक साधर्मी-सती-धर्मात्मा की सेवा करने से उसका हृदय धर्मप्रेम से भर गया। उसे अपनी अंजना माता के जीवन के प्रसंग एक के बाद एक नजरों के सामने आने लगे।

हनुमान के अद्भुत रूप को देखकर लंका की स्त्रियाँ आश्चर्य करने लगीं – ''अरे ! ये कामदेव पुरुष कौन है ? कहाँ से आया है? – ऐसा प्रतापी पुरुष लंका में कहाँ है ?''

दूसरी तरफ हनुमान द्वारा अपमानित हुई रावण की स्त्रियाँ रोती-रोती रावण के पास गईं और हनुमान की सभी बातें कहीं, यह सुनते ही

रावण ने क्रोधित होकर हनुमान को पकड़ लाने के लिए सेना भेजी; परन्तु अकेले हनुमान ने ही सेना को भगा डाला और लंका नगरी में हा-हाकार मचा दिया। अंत में इन्द्रजीत ने आकर हनुमान को पकड़ लिया और बाँधकर रावण के पास लाया। हनुमान को देखते ही आश्चर्ययुक्त सभाजन कहने लगे – "अहो हनुमान ! तुम तो रावण के खास माने हुए सुभट हो ! रावण जैसे महाराजा की सेवा छोड़कर वन में भटकने वाले राम की सेवा करना तुम्हें क्या सूझा ? तुम केशरीसिंह के बच्चे होकर सियार के झुण्ड में क्यों चले गये ?"

हनुमान ने कहा – "रावण परस्त्री-लम्पट होकर दुष्ट कार्य कर रहा है, महासती सीता को उसने छेड़ा है, इस कारण उसका विनाश काल निकट आया है। राम-लक्ष्मण के पराक्रम की उसे खबर नहीं, थोड़े दिनों में ही वे सेना सहित यहाँ आ पहुँचेंगे और रावण को मारकर सीता को ले जायेंगे। **आश्चर्य की बात यह है कि इस सभा में बैठने वाले तुम सब न्यायवान और महा बुद्धिमान होने पर भी रावण को इस दुष्ट कार्य करने से नहीं रोकते ?"**

हे महाराज रावण ! अभी भी यदि तुम्हें सद्बुद्धि सूझे तो राम के आश्रय में जाओ और मानसहित सीता को वापस सौंप दो। तुम्हारे महान कुल में तो बहुत प्रतापवंत राजा मोक्षगामी हुए हैं – ऐसे महान कुल में पाप द्वारा तुम कलंक क्यों लगाते हो ? तुम्हारे इस नीच कार्य से तो राक्षसवंश का नाश हो जायेगा, इसलिए अब भी चेत जाओ और सीता को वापस सौंपकर राम की शरण लो। ये बात करने के लिये ही मैं लंका आया हूँ।

हनुमान की बात सुनते ही रावण ने क्रोधित होकर कहा – "अरे, ये हनुमान भूमिगोचरी का (राम का) दूत बनकर आया है, इसे मरण का डर नहीं; इसे बाँध कर, अपमानित करके नगरी में घुमाओ।"

इसप्रकार रावण की आज्ञा होने से सेवक जन हनुमान को बाँध कर नगर में घुमा रहे थे....कि हनुमान ने एकदम छलाँग मारकर बंधन तोड़ डाले। **जैसे शुक्लध्यान द्वारा मुनिराज मोह-बंधन तोड़ कर मोक्ष में जाते हैं, वैसे ही विद्या द्वारा हनुमान बंधन तोड़कर आकाश में उछले**....और पैरों के वज्र-प्रहारों द्वारा रावण के महलों तक को तोड़ डाला। **जैसे वज्र द्वारा पर्वत टूट जाते हैं, वैसे ही हनुमान के वज्र प्रहार द्वारा लंका नगरी तितर-बितर हो गई।**

''हनुमान को रावण ने बाँध लिया''– यह जानकर सीता रुदन कर रही थी कि इतने में आकाश में हनुमान को उड़ते देखा, इससे प्रसन्न होकर दूर से ही उसे आशीष देने लगी। पुण्य-प्रतापी हनुमान विद्या के बल से आकाश में उड़ते-उड़ते शीघ्र ही किष्किंधापुरी में श्रीराम के समीप आ पहुँचे।

सीता की कुशलता के समाचार – ''सीता का पता लगाकर हनुमान आ पहुँचे'' – यह जानकर किष्किंधानगरी में हर्ष फैल गया। सीता की चिन्ता में जिनका मुख मुरझा गया है – ऐसे श्रीराम हनुमान से सीता की बात सुनकर प्रसन्न हुए। राम की आँखों में आँसू उमड़ पड़े। हनुमान को देखते ही उन्होंने आँसू पोंछकर पूछा –

''हे मित्र ? सचमुच मुझे कहो, क्या मेरी सीता जीवित है ?''

हनुमान ने कहा – ''हाँ देव ! सीता बहिन जीवित हैं, आपके ध्यान में दिन बिता रही हैं। निशानी के रूप में उन्होंने यह चूड़ामणि मुझे दिया है। आपके विरह में उनकी आँखों में तो मानो चौमासा ही (वर्षा ऋतु) लगा है, किसी के साथ बात भी नहीं करतीं। रावण के सामने तो देखतीं भी नहीं, ग्यारह दिन से उनने खाया-पिया भी नहीं था; आपके कुशल समाचार सुनने के बाद आज ही उनने भोजन किया है, इसलिए अब उन्हें वापस लाने का शीघ्र उद्यम करो !''

रावण और राम का युद्ध – यह सुनकर राम-लक्ष्मण ने बड़ी सेना सहित (मार्गशीर्ष/अघहन वदी पंचमी को) लंका की तरफ प्रस्थान किया। रास्ते में अनेक शुभ शगुन हुए।

राम की सेना जब लंका के निकट पहुँची, तब तो लंका में खलबलाहट मच गई। भाई विभीषण ने रावण को बहुत समझाया, परन्तु वह माना नहीं और राम-लक्ष्मण के साथ लड़ने को तैयार हो गया। धर्मात्मा विभीषण से अपने भाई का अन्याय देखा न गया, इससे वह रावण को छोड़कर श्रीराम की शरण में चला गया।

रावण और राम-लक्ष्मण के बीच होने वाले महायुद्ध में हनुमान ने बड़ा पराक्रम करके राक्षसवंशी अनेक राजाओं को हराया। देखो, ज्ञानी न्याय के साथ ही रहते हैं ! जिस हनुमान ने पहले युद्ध में विजय दिलाने के लिए मदद करके रावण को बचाया था, वही हनुमान अभी रावण से स्वयं लड़ रहा है।

एक दिन लड़ाई में रावण की शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण एकदम मूर्छित हो गये....तब हनुमान लंका से अयोध्या आये और विशल्या कुंवरी को विमान में बैठाकर लंका ले आये। विशल्या के निकट पहुँचते ही लक्ष्मण के शरीर में चेतना आने लगी, रावण द्वारा मारी हुई शक्ति दूर हो गई। यही विशल्या बाद में लक्ष्मण की पटरानी बनी। ज्ञातव्य है कि विशल्या पूर्वभव में चक्रवर्ती की पुत्री अनंगसरा थी। (इसकी विस्तृत कहानी जैनधर्म की कहानियाँ भाग-११ में पढ़ें।)

रावण के राजभवन में शांतिनाथ भगवान का जिनालय था। उसकी शोभा अद्भुत थी। अपने भाई तथा पुत्र पकड़े गये हैं और लक्ष्मण अच्छा हो गया है – यह जानकर रावण को युद्ध में अपनी विजय में संदेह होने लगा; अत: वह शांतिनाथ भगवान के मंदिर में बैठकर बहुरूपिणी विद्या साधने लगा। फाल्गुन (पर्व ६८) मास की अष्टाह्निका आई; रावण

की आज्ञा से लंका के लोगों ने इन महान दिनों में सिद्धचक्र मंडल विधान-पूजन किया तथा आठ दिन युद्ध बंद रखा गया। सभी व्रत-उपवास तथा जिन-पूजा में तत्पर हुए, राजा रावण विद्या साधने के लिये लड़ाई की चिन्ता छोड़कर, धैर्य पूर्वक प्रभु सन्मुख अद्‌भुत पूजा करने लगा।

अरेरे, **जिससे मोक्ष साधा जा सकता है, मोही रावण उसी से संसार बढ़ाने वाली विद्या साध रहा है।**

इस समय राम की छावनी में वानरवंशी राजाओं ने विचार किया कि पूजा में उपद्रव करके रावण को क्रोध उत्पन्न करो, जिससे उसे विद्या सिद्ध न हो; क्योंकि क्रोध द्वारा विद्या सिद्ध नहीं होती। तथा अभी लंका जीत लेने का समय है, क्योंकि रावण विद्या साधने बैठा होने से अभी वह लड़ेगा नहीं, परन्तु राम ने ऐसा करने की मनाही कर दी। **सत्य ही है – रावण जिनमंदिर में विद्या साधने बैठा है, उस समय उपद्रव करना न्याय विरुद्ध है – ऐसी अन्याय की प्रवृत्ति सज्जनों को शोभा नहीं देती।**

फिर भी लक्ष्मण से सहमति पाकर वानरवंशी सेना ने रावण की साधना में अनेक प्रकार से विघ्न उत्पन्न करने की कोशिश की; परन्तु अपने लक्ष्य के धनी रावण को वे उसके लक्ष्य से चलित नहीं कर सके, परिणामस्वरूप रावण को विद्या समय से पूर्व ही प्रगट हो गई।

विद्या साधकर रावण भयानक युद्ध के लिये तैयार हुआ, मंदोदरी ने युद्ध नहीं करने और सीता को वापिस सौंप देने के लिए फिर से बहुत समझाया; परन्तु रावण नहीं माना, युद्ध में लक्ष्मण ने रावण को थका दिया। अंत में रावण ने सुदर्शन चक्र से प्रहार किया, परन्तु चक्र तो प्रदक्षिणा करके लक्ष्मण के ही हाथ में आ गया, तब उसी चक्र द्वारा लक्ष्मण ने रावण का शिर छेद डाला।

यद्यपि राम और हनुमान जैसे धर्मात्माओं को युद्ध करना जरा भी प्रिय नहीं था, परन्तु राज्य और भोगों के बीच में रहने वाले धर्मात्माओं की ऐसी कषाय परिणति सर्वथा नष्ट न होने से, सीता को वापिस लाने के लिये ऐसा युद्ध करना पड़ा। रावण की मृत्यु होते ही युद्ध बंद हुआ। राम ने मंदोदरी वगैरह को धीरज बँधाया, रावण का अंतिम संस्कार कराया तथा इन्द्रजीत, कुंभकर्ण, मेघनाथ वगैरह सभी बंधकों को मुक्त कर दिया, **सत्पुरुष अपने राग-द्वेष को कभी लम्बाते नहीं हैं।**

अनंतवीर्य केवली का लाभ – एक तरफ युद्ध पूरा हुआ और दूसरी तरफ उसी दिन **अनंतवीर्य महामुनिराज का ससंघ लंका के कुसुमायुध नामक उद्यान में पदार्पण हुआ। वे अनंतवीर्य महा मुनिराज का ५६००० मुनियों** के बीच एक निर्मल शिलातट पर बैठे ऐसे शोभायमान हो रहे थे कि मानो, नक्षत्रों घिरा हुआ चन्द्रमा ही हो। उसी रात्रि में **शुक्लध्यान में आरूढ़ अनंतवीर्य महामुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।**

चार निकाय के देवों ने आकर भगवान की स्तुति की और गंधकुटी की रचना हुई। सभी लंकावासी भी भगवान की दिव्यध्वनि सुनने गंधकुटी पहुँच गये।

भगवान ने संसार की चारों गतियों के दुःखों का वर्णन करके मोक्षसुख को साधने का उपदेश दिया। अहो, हितकारी मधुर वाणी में उनका धर्मोपदेश सुनकर रावण के भाई कुंभकर्ण तथा पुत्र इन्द्रजीत, मेघवाहन आदि ने तथा मंदोदरी आदि रानियों ने संसार छोड़कर दीक्षा ले ली। उस दिन मंदोदरी के साथ ४८००० माता-बहिनों ने संयम धारण कर अपने भव के अभाव करने का मंगल कार्य आरम्भ किया।

वाह ! कैसा धर्मकाल होगा वह, जिसकी कल्पना करके हृदय आज भी रोमाञ्चित हो जाता है।

श्री राम-लक्ष्मण ने लंका में प्रवेश किया। राम और सीता का मिलाप हुआ। **जैसे अनुभूति में सम्यक्त्व के साथ शांति का मिलन होने से आत्माराम आनंदित हुआ।** वैसे ही राम और सीता का मिलन होने से दोनों के नेत्रों में से आनंदमय आँसू झरने लगे। देव भी इस दृश्य को देखकर प्रसन्न हुए। धन्य सती सीता ! धन्य तेरा शील ! और धन्य तेरा धैर्य ! – ऐसे शब्दों से आकाश गुंज उठा।

लक्ष्मण ने आकर भवसागर से तरनेवाली और मोक्ष की साधिका – ऐसी सती सीता माता को वंदन किया। भाई भामण्डल भी अपनी बहिन को वंदनकर आनन्दित हुआ और जब हनुमान ने आकर सीता को वंदन किया, तब अत्यंत प्रसन्नता से सीता ने कहा –

"अहो, वीर ! तुम तो हमारे धर्म के भाई हो। तुम्हीं ने यहाँ आकर मुझे स्वामी का संदेश देकर जीवित किया था। भाई हो तो ऐसा हो !" इसप्रकार सीताजी ने हनुमान के प्रति अति वात्सल्य बताया। वाह साधर्मी प्रेम ! तेरी महिमा तो सगे भाई-बहन से भी अधिक है।

पश्चात् राम आदि सभी ने केवली भगवान की दिव्यध्वनि का पूर्ण मनोयोग से श्रवण किया। सीता सहित श्री राम, रावण के राजभवन में स्थित श्री शांतिनाथ भगवान के मंदिर में आये। प्रभु का दर्शन कर शांतिचित्त हो विविध प्रकार से शांतिनाथ जिनेन्द्र की इसप्रकार स्तुति/भक्ति की– "**अहो प्रभो ? आप राग-द्वेष रहित परम शान्तदशा को प्राप्त हो गये हो, जिसमें परभावों का आश्रय नहीं, केवल निज भाव का ही आश्रय है – ऐसी सिद्धपुरी आपने साध ली है।**"

राम के साथ में देवी सीता भी भावभीने चित्त से वीणा जैसी मधुर स्वर से प्रभु की स्तुति करने लगी। लक्ष्मण, विशल्या, हनुमान, भामण्डल वगैरह भी खूब आनन्द से जिन-भक्ति में भाग लेने लगे और और सबका मन-मयूर नाच उठा ?

अहो, रावण की लंका में, राम-हनुमान जैसे चरमशरीरी जीवों द्वारा शांतिनाथ भगवान की अद्भुत भक्ति का ये प्रसंग देखकर, जिनमहिमा से अभिभूत होकर अनेक भव्यजीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। **वास्तव में जीवों को एक जैनधर्म ही शरण और शांति देने वाला है। धन्य है जैनधर्म ! और धन्य हैं इसके सेवक !!**

अयोध्यापुरी में पुनरागमन – पद्मपुराण पर्व ८० में आता है कि राम-लक्ष्मण का लंका में अर्द्धचक्री के रूप में सबने मिलकर राज्याभिषेक किया और वे ६ वर्ष तक लंका में सुखपूर्वक रहे। पश्चात् विभीषण को राज्य सौंपकर भामण्डल, सुग्रीव, हनुमान आदि साथ श्री राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्यापुरी आये।

आसमान में दूर से राम आदि के विमानों को आते हुए देखकर भरत त्रिलोकमण्डन हाथी पर चढ़कर राम के स्वागत हेतु आये। राम-लक्ष्मण भी पुष्पक विमान से उतरकर भरत से मिले, भरत को भी पुष्पक विमान में बैठा लिया और अयोध्या के चारों ओर विमान में बैठे-बैठे तीन चक्कर लगाये, फिर अयोध्या में प्रवेश किया। आज अयोध्या नगरी में आनन्द-आनन्द छा गया। अयोध्या-वासियों की प्रसन्नता का कोई ओर-छोर नहीं था, राम-लक्ष्मण की जयकारों से आकाश गुंजायमान था, भूतल पर अयोध्या नगरी दुल्हन की तरह सजी थी तो आसमान विद्याधरों से शोभायमान था।

इसप्रकार प्रजा का वात्सल्य, स्नेह, सम्मान पाते हुए जब वे राज महल में पहुँचे, तब माताओं को अभिवादन करते हुए वे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहे थे। माताओं ने भी उनका अत्यन्त उत्साह और आनन्द से स्वागत किया और अनेक वर्षों से विछुड़े अपने पुत्रों से मिलकर हर्षाश्रुओं से अपना सम्पूर्ण स्नेह उडेल दिया। थोड़े दिनों बाद हनुमानजी ने अपने नगर को प्रस्थान किया। (हनुमान की विस्तृत कथा

जानने हेतु जैनधर्म की कहानियाँ भाग-४ का स्वाध्याय करना चाहिए।)

भरत का वैराग्य – अयोध्यापुरी में राज्य करते हुए और इन्द्र समान भोग भोगते हुए भी राजा भरत उनमें हर्ष नहीं मानते थे, वे निरन्तर विचार करते थे कि ये भोग एकदम क्षणभंगुर एवं नीरस हैं, इनमें किंचित् भी सुख नहीं है। कौन विवेकी इनमें राग करेगा ? – ऐसा चिंतवन करने वाले शान्तस्वभावी भरत के मन में महाव्रत धारण करने की तीव्र छटपटाहट थी। राम-लक्ष्मण के अयोध्या लौट आने पर यह छटपटाहट और भी तीव्र हो गई।

एक दिन वे शान्तचित्त से गृहत्याग कर दीक्षा लेने हेतु श्रीराम के पास जाकर कहने लगे कि भैया ! अब मैं दीक्षा हेतु वन में जाता हूँ, लेकिन केकयी के कहने से राम ने यह कहकर भरत को रोकने का प्रयास किया कि ''हे भाई ! मैं राक्षसवंशियों के स्वामी रावण को जीतकर तुमसे मिलने यहाँ आया हूँ, राज्य करने नहीं। अतः तुम निष्कंटक राज्य करो। बाद में मैं भी तुम्हारे साथ मुनिव्रत धारूँगा।''

किन्तु कुछ दिनों बाद..., अब यह संभव नहीं है। मैं तो आज और अभी तपोवन जाऊँगा। – ऐसा कहकर भरत एकदम विरक्तचित्त से मुनिदीक्षा लेने हेतु चल दिए।

त्रैलोक्यमंडन हाथी का उत्पात और शान्त होना – उसी समय त्रैलोक्यमंडन नामक प्रसिद्ध हाथी बन्धन तुड़ाकर भाग निकला। उसने अयोध्या में बहुत उपद्रव मचाया। बाद में वह हाथी भरत को देखकर शान्त हो गया; क्योंकि उसे अपना वह पूर्वभव भी जान लिया, जिसमें वह स्वयं और भरत मुनिदशा में थे और किन्ही अन्य मास-उपवासी मुनिराज के स्थान पर मैं सामायिक हेतु बैठ गया था तथा भक्तों द्वारा प्रशंसा सुनकर भी मैंने यह नहीं बताया था कि ''वह मासोपवासी मुनि मैं नही हूँ।'' – इसी के फल में मैं हाथी बन गया।

भरत ने उसे मधुर वचनों से सम्बोधित किया – ‘‘हे गजराज ! तू किस कारण से ऐसा क्रोधित हुआ है?’’ हाथी अपने मन में विचार कर रहा था कि यह भरत मेरा परममित्र है। ब्रह्मोत्तर नामक छठे स्वर्ग में हम दोनों साथ थे। वहाँ से चलकर भरत तो पुण्य प्रभाव से उत्तम पुरुष हुआ है, जबकि मैं अपने

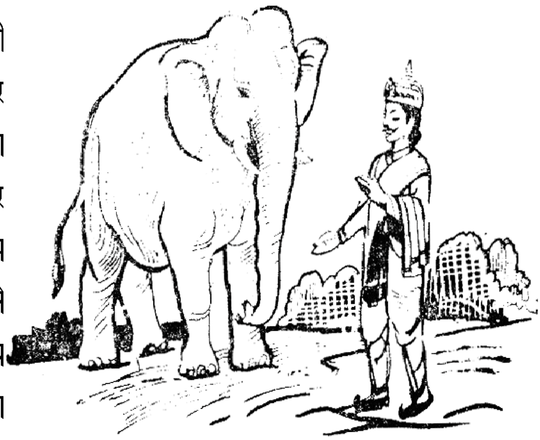

अशुभ-कर्मयोग से तिर्यंच हुआ हूँ। अब मुझे आत्म-कल्याण का उपाय करना चाहिये, ताकि मेरा पुनः संसार-भ्रमण न हो। इसप्रकार चिंतवन करके, त्रैलोक्यमंडन हाथी अत्यन्त विरक्त हो गया। यह पापचेष्टा से पराङ्मुख होकर शुद्ध के लक्ष्यपूर्वक शुभक्रियाओं में एकाग्रचित हो गया।

राम-लक्ष्मण ने महा-विनयवान और धर्म का चिंतवन करते हुए इस गजराज को देखा तो वे इसके पास आये। लक्ष्मण की आज्ञा से उस हाथी को बहुत प्रकार के अलंकार पहनाकर उसका सत्कार किया गया।

अथानन्तर अयोध्या के महेन्द्रोदय उद्यान में महासंघ सहित विहार करते हुए देशभूषण-कुलभूषण केवलीद्वय का भव्यजीवों के हितार्थ सहज ही आगमन हुआ। जिनका वंशगिरि पर राम-लक्ष्मण ने उपसर्ग दूर किया था। उनके आगमन का समाचार पाते ही राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न सपरिवार उनके दर्शनार्थ हाथियों पर सवार होकर

आगे-आगे त्रैलोक्यमंडन हाथी और पीछे-पीछे अयोध्यावासी चल रहे थे।

केवली भगवान का छत्र देखते ही रामचन्द्र आदि हाथियों से उतरकर पैदल चलने लगे। सबने हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति की, प्रणाम किया, पूजा की और फिर भगवान की दिव्यध्वनि सुनने के लिए योग्य स्थान पर बैठ गये। केवली भगवान की दिव्यध्वनि प्रसारित होने लगी।

''वस्तुतः रागादिक ही संसार के कारण हैं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्ष के कारण हैं। यतिधर्म तो साक्षात् मोक्ष का कारण है, जबकि श्रावकधर्म परम्परा से मोक्ष का कारण है।

प्रत्येक व्यक्ति के प्रतिसमय तीन क्रियाएँ एक साथ हो रही हैं– एक तो शरीर की क्रिया, दूसरे शुभ या अशुभ विकारी परिणाम अर्थात् विभाव की क्रिया और तीसरी जानन-क्रिया। शरीर तथा मन की कैसी भी स्थिति हो, उसका जानना हो रहा है। हमें यह निर्णय करना है कि शरीर अथवा विकारी परिणाम मैं हूँ, या कि उनको जानने वाला हूँ? ये तीनों क्रियाएँ एक साथ हो रही हैं, इस बात का आज तक इस जीव को ज्ञान ही नहीं था।

चूँकि जानन-क्रिया जीव की पकड़ में नहीं आयी, केवल शरीर और मन की क्रियाएँ ही पकड़ में आ रही हैं, इसलिये शरीर की क्रिया और राग-द्वेषरूप परिणामों को ही इसने अपना होना, अपना अस्तित्व समझा, स्वयं को इन्हीं का कर्त्ता माना। इनके अतिरिक्त, कोई जाननक्रिया भी हो रही है, जो इन दोनों से भिन्न है, विलक्षण है, – यह बात कभी इसकी समझ में नहीं आयी।

फल यह हुआ कि धर्म के लिये इसने एक ओर तो परिणामों

को बदलने की चेष्टा की। अशुभ से शुभरूप बदलने का प्रयत्न किया और दूसरी ओर शरीराश्रित क्रिया को भी अशुभ से शुभरूप बदलना चाहा। यदि शरीर और मन की ये क्रियाएँ बदल गईं तो इस बदलाव को ही इसने धर्म मान लिया और अहंकार किया कि 'मैंने ऐसा कर लिया।' किन्तु ये दोनों ही पर-आश्रित क्रियाएँ हैं, जिनके बदलने से धर्म होना सम्भव नहीं है।

धर्म तो आत्मा का स्वभाव है, जिसका सम्बन्ध उस तीसरी, जानन-क्रिया से है। यह नासमझी, यह गलती उस जानने वाले की ही है कि उसने अपनी स्वाभाविक क्रिया को न पहचानकर, विकारी परिणामों और शरीराश्रित क्रियाओं में ही अपनापना मान रखा है। यही अहंकार है, यही मिथ्यात्व है, यही संसार है, जो तबतक नहीं मिट सकेगा, जबतक कि यह जीव जाननरूप अपने स्वभाव को नहीं जानेगा।

धर्म के मार्ग पर चलने की शुरुआत के लिये जरूरी है कि सर्वप्रथम जीव यह निर्णय करे कि जानन-क्रिया मेरे ज्ञाता-स्वभाव से उठ रही है। जैसा अपनापना, जैसी एकत्वबुद्धि शरीराश्रित क्रियाओं और विकारी परिणामों में है, वैसा अपनापना, वैसी एकत्वबुद्धि उनके बजाय निज ज्ञानस्वभाव में आनी चाहिये।

जिस किसी व्यक्ति के जीवन में ऐसा घटित हो जाता है, उसे वास्तव में अनुभव होता है कि चलते हुए भी मैं चलनेवाला नहीं, अपितु चलने की क्रिया का सिर्फ जाननेवाला हूँ; बोलते हुए भी मैं बोलने वाला नहीं, बल्कि बोलने वाले को मात्र जानने वाला हूँ; मरते हुए भी मैं मरनेवाला नहीं, अपितु मरण को केवल जाननेवाला हूँ। इसी प्रकार क्रोध होते हुए भी मैं क्रोधरूप नहीं, बल्कि उसका मात्र जानने वाला हूँ; लोभादिक होते हुए भी लोभादि का करनेवाला नहीं,

मात्र जाननेवाला हूँ; दया-करुणा आदि परिणाम होते हुए भी मैं न तो उनरूप हूँ, न उनका करनेवाला हूँ, अपितु उनका केवल जाननेवाला हूँ। मैं तो जानने के सिवाय और कुछ कर ही नहीं सकता, यही साक्षीभाव है। इसप्रकार इस जीव के 'स्व' और 'पर' के बीच भेदविज्ञान पैदा होगा। तब यह शरीर में रहते हुए भी शरीर से अलग हो जाएगा, संसार में रहते हुए भी संसार इसके भीतर नहीं रहेगा।

पहले इन तीन क्रियाओं को एक-दूसरे से भिन्न जानना है और फिर मात्र जाननपने में अपनापना – एकत्व – तादात्म्य स्थापित करना है। यहाँ जाननपने के सम्बन्ध में यह भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि जो जानने का कार्य हो रहा है, वह कर्म सापेक्ष क्षायोपशमिक ज्ञान का कार्य है – जो ज्यादा-कम होता है, जिसमें इन्द्रियों और मन की सहायता की जरूरत है, जो सविचार-सविकल्प है, जो ज्ञान-विशेष है उसको नहीं पकड़ना है; प्रत्युत, इसके माध्यम से उस स्रोत को पकड़ना है, जहाँ से यह ज्ञान-विशेष उठ रहा है, जो ज्ञान-सामान्य है, जो ज्ञान-पिण्ड है, जो निर्विकल्प है, जिसमें से जानने की यह लहर उठ रही है।

उपर्युक्त तीनों क्रियाओं को अलग-अलग जानना तो अपेक्षाकृत सरल है; परन्तु उस जाननपने में, ज्ञातापने में अपनापना स्थापित करना कठिन है। फिर भी, इसके लिये उपाय है। थोड़ी देर के लिए शरीर की क्रिया का कर्त्ता न बनकर, मात्र देखने लगेंगे तो पायेंगे कि जानने वाला शरीर से अलग है। इसी प्रकार विकल्पों का कर्त्ता न बनकर मात्र ज्ञाता बने रहें।"

– इसप्रकार केवली के वचन वैराग्य के मूलस्रोत हैं और रागादिक के नाशक हैं। हमें यह भलीभांति समझ लेना चाहिए।

लक्ष्मण ने देशभूषण केवली से पूछा – हे प्रभो ! यह त्रैलोक्यमंडन

हाथी किस कारण से क्रोधित हुआ था और फिर किस कारण से शान्त हो गया है?

देशभूषण केवली की वाणी में आया कि पहले तो यह लोगों की भीड़ देखने पर मदोन्मत्त हुआ था; किन्तु भरत को देखने पर इसे जातिस्मरण हो गया, इसलिये यह शान्तभाव को प्राप्त हो गया। भरत और यह गजराज पूर्व के अनेक भवों में साथ-साथ ही रहे हैं।

भरत का चित्त अब संसार शरीर भोगों से पराङ्मुख हो गया है, उनका मन मुनिव्रत लेने के लिए तत्पर है, वे दीक्षा ग्रहण कर इसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे।

अथानन्तर गुरुओं के चरणों में नतमस्तक भरत ने देशभूषण केवली से हाथ जोड़कर कहा– ''हे नाथ ! मैं संसार की नाना कुयोनियों में चिरकाल तक भ्रमता हुआ बहुत दुःखी हो गया हूँ और अब थक चुका हूँ। अतः मुझे मोक्ष की कारणभूत जिनदीक्षा प्रदान कीजिये।

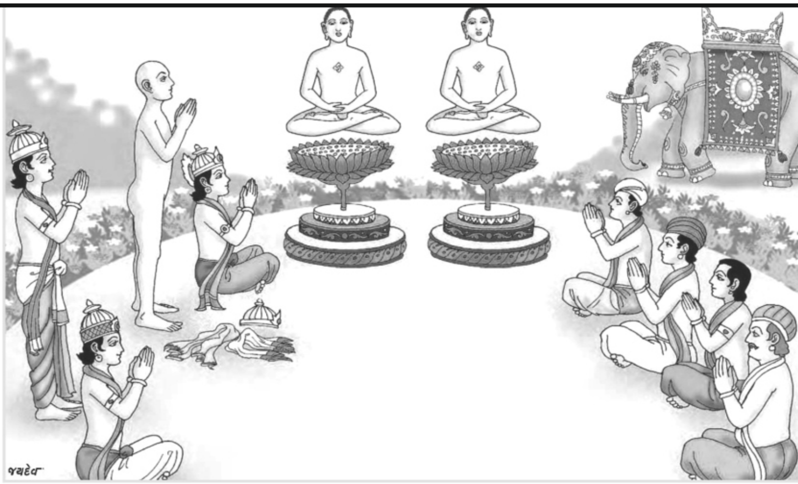

लक्ष्मणजी हाथीकी दशा देखकर उसके बारेमें केवली भगवानको प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करते हैं। भगवानकी वाणी सुनकर केवलीकी सभामें भरतजी दीक्षित होते हैं। त्रिलोकमंडन हाथी केवली भगवानके समक्ष श्रावकके व्रत अंगीकार करता है।

यह कहकर भरत ने केवली भगवान की आज्ञानुसार समस्त परिग्रह

त्यागकर, अपने हाथों से केशलोंच कर, महाव्रत धारण करके दिगम्बरी दीक्षा धारण की। भरत से अनुराग रखने वाले सहस्राधिक राजा भी अपना समूचा वैभव त्यागकर दिगम्बर मुनि हो गये।''

यह गजराज भी जातिस्मरण के बाद अत्यन्त शान्त हो गया है। यह श्रावक के व्रत धारण करके देव होगा। यह भी निकटभव्य है तथा शीघ्र ही मोक्षसुख प्राप्त करेगा। यह जानकर श्रावकगण उस हाथी को स्वयं अपने हाथों से शुद्ध भोजन बनाकर उसको खिलाते और महिमा करते कि अरे, यह तिर्यंच गति का जीव भी जब सच्चा धर्म प्राप्त कर मोक्षमार्गी हो सकता है, तब फिर हम क्यों नहीं हो सकते। – इसप्रकार पात्र जीव उससे प्रेरणा लेकर अपना कल्याण को मार्ग प्रशस्त करते।

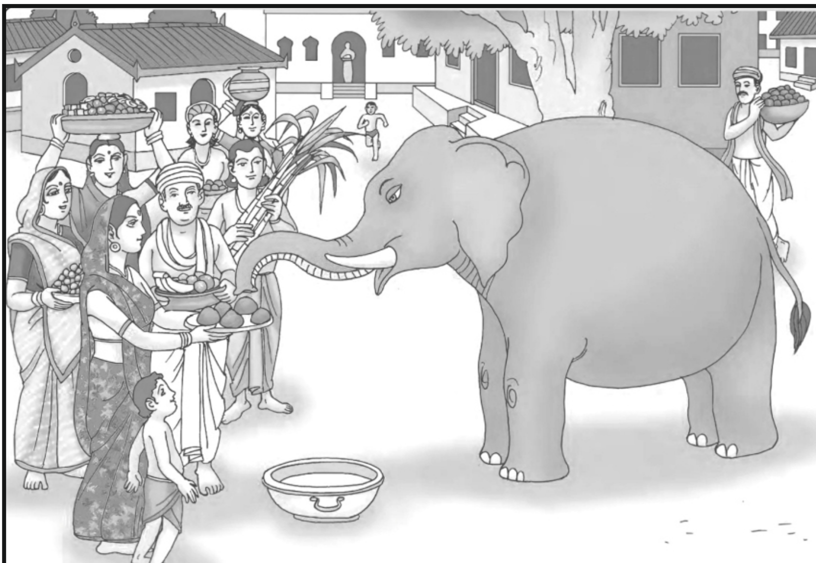

वैरागी श्रावक हाथी त्रिलोकमंडन मासोपवासके पारणाके हेतु नमरमें आनेसे नगरजन उसको अत्यंत भक्तिपूर्वक शुद्ध आहार-जलसे पारणा कराते हैं।

भरत के वैराग्य समाचार सुनकर माता केकयी बहुत विलाप करने

लगी। राम-लक्ष्मण ने उन्हें नाना प्रकार से सम्बोधित करके धैर्य बँधाया, जिससे प्रतिबुद्ध होकर केकयी अपने अज्ञान की बहुत निन्दा करने लगी –

"धिक्कार है इस स्त्रीपर्याय को, जो महादोषों की खान है। यह स्त्रीपर्याय अत्यन्त अशुचि और वीभत्स, नगर की गंदी नाली के समान है। मुझे चाहिये कि अब मैं ऐसा उपाय करूँ, जिससे फिर कभी स्त्रीपर्याय धारण न करनी पड़े और मैं संसार-समुद्र से तिर जाऊँ।" केकयी महाज्ञानवान तथा जिनशासन की भक्त तो थी ही, अब वैराग्य को प्राप्त होकर पृथ्वीमति आर्यिका के समक्ष आर्यिकाव्रत धारण कर आत्मसाधना करने लगीं। उनके साथ तीन सौ अन्य स्त्रियों ने भी आर्यिकाव्रत धारण किए।

पश्चात् घर आने पर राम-लक्ष्मण ने अतिप्रेम से अपने भाई शत्रुघ्न से कहा कि "जो भी देश तुम्हें अच्छा लगे, वहीं का राज्य ले लो।" "मुझे मथुरा का राज्य दीजिये" – शत्रुघ्न ने कहा।

मथुरा के अतिरिक्त अनेकों और भी वैभवशाली राज्य थे, फिर भी शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य ही क्यों चाहा, – यह एक विचारणीय तथ्य है। शास्त्र कहते हैं कि पूर्व के अनेक भवों में शत्रुघ्न का जन्म मथुरा में हुआ था, अनेकों बार पूर्व में शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य किया था, अत: शत्रुघ्न को मथुरा से पूर्व संस्कारवश सहज ही अपनापन था, इसलिए उसने "मुझे मथुरा का राज्य दीजिये" – ऐसा कहा।

शत्रुघ्न को मथुरा का राज्य – उन्होंने शत्रुघ्न को मथुरा पर राज्य करने की अनुमति प्रदान की, जहाँ पहले से ही शक्तिशाली राजा मधु राज्य करता था, जिसकी सेवा में देव सदा तत्पर रहते थे। शत्रुघ्न और मधु का युद्ध हुआ। मधु के पुत्र लवणसागर का युद्ध में मरण हो जाने से मधु राजा को अत्यंत विरक्ति हो गई और वे तत्काल

दिगम्बरी दीक्षा धारण कर मुनि बन गये, तब शत्रुघ्न ने उन्हें नमस्कार वंदना कर उनका आदर किया, पश्चात् मथुरा में प्रवेश किया। मुनिराज मधु समाधि पूर्वक मरणकर सनत्कुमार स्वर्ग में देव हुए। (जैनधर्म की कहानियाँ भाग-१० में राजा मधु के वैराग्य का अद्‌भुत वर्णन एवं मरी रोग का उपद्रव और उसका निवारण आदि अनेक प्रसंगों का रोचक व ज्ञानवर्द्धक वर्णन है। अत: सभी को उसका भी स्वाध्याय करना चाहिए।)

सीता को दोहला आना – इसप्रकार सीता सहित राम अब अयोध्या में सुखपूर्वक रह रहे थे, कि तभी एक दिन रात्रि के अन्तिम पहर में सीता ने दो स्वप्न देखे, जिनमें से एक का फल इष्ट की प्राप्ति तथा दूसरे का फल अनिष्ट की प्राप्ति होना था।

अब यद्यपि सीता गर्भ के भार से भले ही दुर्बल हो रही हो, तथापि उसके चित्त में अनेक चैत्यालयों के दर्शन की इच्छा है। अत: राम और सीता दोनों महेन्द्रोदय उद्यान के चैत्यालयों में जाकर बहुमूल्य सामग्री द्वारा विधिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की पूजा-भक्ति करते हैं। तथा संध्या हो जाने से वे वहीं रात्रि-विश्राम करने रूक जाते हैं।

दूसरे दिने महेन्द्रोदय उद्यान में ही कुछ लोग रामचन्द्रजी से मिलने आ पहुँचे।

रामचन्द्रजी लोगों से प्रेमपूर्वक मिले, तब पहले तो वे लोग मूर्ति की भाँति निश्चल खड़े रहे, पर बाद में रामचन्द्रजी के अभयदान देने पर विजय नामक एक व्यक्ति शीश झुकाते हुए हाथ जोड़कर साहस करके अति विवेक एवं विनय पूर्वक बोला –

हे नाथ ! हे नरोत्तम ! घर-घर में और सभाओं में आजकल यही एक अपवाद-कथा चल रही है कि महारानी सीता का रावण हरण करके ले गया था, फिर भी उसे महाराज दशरथ के पुत्र राजा श्रीराम, जो सर्वशास्त्रों में प्रवीण हैं, अपने घर ले आये हैं; तब फिर

और लोगों को ऐसा करने में क्या दोष है ? और इसी आधार पर एक धोबी ने पर घर रही हुई अपनी पत्नि को घर में रख लिया। अत: समाज इसे अनुचित माने या उचित ? बस इसी संबन्ध में हम सभी आपसे न्याय/निर्देश सुनने आये हैं।

विजय के ऐसे वचन सुनकर रामचन्द्रजी थोड़ी देर के लिये विषाद के कारण चलायमान हो गये। वे सोचने लगे – "तो क्या मैं भी अपवाद की कारणभूत सीता का त्याग कर दूँ ?.... ऐसा कैसे हो सकता है?.... परन्तु यदि त्याग न करूँ..... तो भी अपकीर्ति अवश्य होगी।" अत: उन्होंने सीता को त्यागने का दृढ़निर्णय कर लिया।

लक्ष्मण आदि ने उन्हें बहुत समझाया, पर वे तो अपने निर्णय पर दृढ़ रहे, – उन्होंने सेनापति कृतांतवक्र को आदेश दिया कि –

"शीघ्र ही सीता को ले जाकर उसे सम्मेदशिखर आदि निर्वाणभूमियों के और मार्ग में स्थित सभी चैत्यालयों के दर्शन कराके, उसे सिंहनाद नामक वन में छोड़ आओ।"

इसके बाद राम पश्चाताप की आग में जलते रहे, जिसका विस्तृत वर्णन डॉ. हुकमचंद भारिल्ल ने अपनी लोकप्रिय कृति 'पश्चाताप' में किया है, पाठकों को उसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

राम के द्वारा सीता का त्याग – सिंहनाद नामक वन में छोड़ते हुए सेनापति कृतांतवक्र ने भारी मन से रोते हुए सीता को सभी बातें बता दी। तब सीता ने रोते हुए कहा – "**हे सेनापति ! तुम अपने को दोषी क्यों मानते हो ? स्वामी की आज्ञा पालन करना सेवक का कर्त्तव्य होता है।** जब तुम स्वामी से मिलो तब उनसे कहना कि वे मेरे त्याग का विषाद न करें; अपितु परम धैर्य का अवलम्बन लेकर सदैव प्रजा की रक्षा करें। **हे सेनापति ! तुम उनसे यह भी**

कहना कि हे पुरुषोत्तम ! यदि अभव्य जीव रत्नत्रय धर्म की निंदा करें, तो उनकी निंदा के भय से धर्म का त्याग कभी न करना।"

इसप्रकार सेनापति के साथ शुभ संदेश भेजने के बाद सती सीता विचारमग्न हो गईं। वे कभी तत्त्वचिंतवन करती और कभी पुनः विलाप करने लगती।

संयोग की बात कि उसी समय वन में आये पुण्डरीकपुर नगर के राजा वज्रजंघ ने सीता के पास जाकर कहा – हे बहिन ! तुम कौन हो तथा इस निर्जनवन में अकेली कैसे विलाप कर रही हो?

सीता ने रोते-रोते बताया – हे राजन् ! मैं राजा जनक की पुत्री, विद्याधर राजा भामण्डल की बहिन और राजा दशरथ की पुत्रवधू हूँ। मेरा नाम सीता है, लेकिन लोकापवाद के कारण मेरे स्वामी श्रीराम ने मुझे जंगल में छुड़वा दिया।

राजा वज्रजंघ ने सीता को धैर्य बँधाते हुए कहा – हे शुभमते! तुम जिनशासन में प्रवीण हो, शोक मत करो। तुम्हारे पति श्रीराम

भी सम्यग्दृष्टि हैं और तुम भी सम्यक्त्व सहित विवेकी हो। मैं पुण्डरीकपुर का स्वामी वज्रजंघ हूँ। महाशुभचारी सोमवंशी राजा द्विरदवाह की रानी सुबन्धु का पुत्र हूँ। हे बहिन ! शोक का त्याग करो; क्योंकि उससे कोई कार्यसिद्धि नहीं होती। मेरे साथ पुण्डरीकपुर चलो, तुम वहाँ रहना। मुझे विश्वास है कि पश्चाताप से आकुलित चित्त राम फिर से तुम्हारी खोज कर तुम्हें ससम्मान ले जाएँगे।

राजा वज्रजंघ ने सीता के लिये तुरन्त एक पालकी मंगवायी। सीता उस पर आरूढ़ हो गयी। तीन दिन में वे उस भयंकर वन को पार करके पुण्डरीकपुर आ गये। सीता पालकी से उतरकर जिनमन्दिर में गयी। जिस प्रकार भाई भामण्डल सीता का सम्मान करता था; उसी प्रकार वज्रजंघ ने भी सीता का आदर किया। राजा वज्रजंघ के परिवार के समस्त व्यक्ति और समस्त रानियाँ भी सीता की सेवा करने लगीं।

उधर कृतांतवक्र सेनापति ने रामचन्द्रजी के पास पहुँचकर बड़े दुखद मन से रोते हुए सीता का संदेश सुनाते हुए कहा – हे प्रभो! महारानी सीतादेवी ने आपसे कहा है कि – "**जिसप्रकार लोकापवाद के भय से आपने मुझे त्याग दिया है; उसीप्रकार कहीं धर्म को न त्याग देना, लोगों के कहने से जिनशासन की श्रद्धा मत छोड़ देना।** मुझे छोड़ देने से तो इस भव में ही किंचित् मात्र दुःख होगा; किन्तु सम्यग्दर्शन धर्म छोड़ देने से तो जन्मों-जन्मों में बहुत दुःख होता है। इस जीव को लोक में वैभव, रत्न, स्त्री, राज्य आदि सभी सुलभ हैं; लेकिन सम्यग्दर्शनरूपी रत्न महादुर्लभ है। जिसने अपने आत्मा को सम्यग्दर्शनरूपी आभूषण से मण्डित किया, वही कृतार्थ है।"

सेनापति के मुख से सीता के समाचार सुनकर श्री रामचन्द्र अत्यन्त दुःखी हुए। वे सोचने लगे कि देखो ! मुझ मूर्ख ने दुष्टों के

वचनों के पीछे यह अत्यन्त निंदनीय कार्य किया है। इसप्रकार सोचकर वे मूर्छित हो गये। लक्ष्मण आदि द्वारा कुछ उपचार के बाद होश में आने पर फिर विलाप करने लगे और फिर धीरे-धीरे सीता के वियोगजनित दुख को भोगने के आदि हो गये, तथा राज-काज एवं धर्म-कर्म में उपयोग लगाते हुए समय बिताने लगे।

लवण और अंकुश का जन्म और शिक्षा – इधर पुण्डरीकपुर में सीता ने नौ माह पूर्ण होने पर श्रावण की पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र में दो पुत्रों को जन्म दिया। इस अवसर पर राजा वज्रजंघ ने भी नगर में बहुत उत्सव किया और पुत्रों का नाम अनंगलवण तथा मदनांकुश रखा गया। वे दोनों बालक दोज के चन्द्रमा की तरह वृद्धि करते हुए माता के हृदय को आनंदित करने लगे।

एक दिन सिद्धार्थ नामक क्षुल्लकजी के लिए सीता द्वारा उत्तम आहार दिया गया। यद्यपि वे क्षुल्लकजी महाविरक्त चित्त वाले थे; तथापि दोनों कुमारों के अनुराग से वे कुछ दिन उनके पास रहे। क्षुल्लकजी ने उन्हें शास्त्र-विद्या देते हुए समझाया – **हे वत्स ! आत्मा चैतन्य है, वह अपने अस्तित्व का अनुभव स्वयं में करे। वह अनुभूति स्वरूप होने पर भी अपने अस्तित्व का भान स्वयं में न करके मन-वचन-काय तथा कर्मचेतना में कर रहा है। इसलिये इन्हीं के साथ एकत्व और आसक्ति को प्राप्त हो रहा है।** इनके जन्म-मरण से अपना जन्म-मरण मानकर दुःखी होता है। थोड़े ही दिनों में वे दोनों शास्त्रज्ञान में प्रवीण हो गये।

लवण-अंकुश का राम-लक्ष्मण से युद्ध और मिलन– इधर जब नारद को राम द्वारा सीता के परित्याग का पता चला तो वे उसकी खोज में जगह-जगह भटकने लगे। आखिर पुण्डरीकपुर में लवणांकुश उन्हें मिल ही गये। जब नारद इनके पास पहुँचे तो दोनों ने नारद का

बहुत सम्मान किया। नारद ने इन्हें प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि राम-लक्ष्मण की भाँति लक्ष्मीवान होओ।

ये राम-लक्ष्मण कौन हैं ? – ऐसा पूछने पर नारद ने उनका विस्तार से परिचय देते हुए कहा कि वे अयोध्या के राजा हैं।

तब लवण ने पूछा – ‘‘आप यह तो बताइये कि यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है।’’

नारद ने कहा – ‘‘यहाँ से एक-सौ आठ योजन दूर है।’’

दोनों ने राजा वज्रजंघ से कहा – हे मामा ! अपने अधीनस्थ सभी राजाओं को पत्र भिजवाइये कि वे ससैन्य शीघ्र आ जायें, हम अयोध्या पर आक्रमण कर रहे हैं।

यह समाचार सुनकर सीता रोने लगी। माता को रोते हुए देखकर दोनों भाइयों ने पूछा – ‘‘हे माता ! तुम किस कारण रो रही हो?’’

सीता – ‘‘तुमने अपने पिता से युद्ध करने का निश्चय जो किया है,’’ दोनों भाइयों ने पूछा – ‘‘हमारे पिता कौन हैं ?’’ सीता ने उन्हें शुरू से लेकर आखिर तक की सारी बातें विस्तार से सुना दीं। तब दोनों भाइयों ने माता से कहा – ‘‘हे माता ! हमारे पिता महाबलवान, लक्ष्मीवान तथा लोकश्रेष्ठ हैं; फिर भी उन्होंने तुम्हें वन में छोड़ दिया, यह अच्छा नहीं किया। अतः हम उनका मात्र मान भंग करेंगे, प्राण हरण नहीं करेंगे, आप दुःखी मत होओ।’’

तत्पश्चात् माता को प्रणाम करके उन दोनों कुमारों ने अयोध्या की ओर प्रयाण किया। पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ और विशालकाय सेना भी उनके साथ थी।

अयोध्यानगरी सरयू नदी के उस पार थी। अतः वे दोनों भाई उस नदी को उसी प्रकार शीघ्र पार करना चाहते थे; **जिस प्रकार**

कोई मुमुक्षु मुनि आशारूपी नदी को शीघ्र पार करके यथाख्यात चारित्र प्राप्त करना चाहता है। सर्यू नदी ने लवणांकुश को उसी प्रकार रोक दिया **जैसे मोक्ष की भी अभिलाषा मुनियों को मोक्ष प्राप्त करने से रोक देती है।**

उधर राम-लक्ष्मण शत्रु-सेना का आक्रमण सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। राम के पक्ष के सभी राजा भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आ गये।

इधर भामण्डल भी सीता को साथ लेकर शीघ्रता से अयोध्या की ओर चल दिये।

इधर लवणांकुश और राम-लक्ष्मण की सेनाओं में भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। राम का अनंगलवण के साथ और लक्ष्मण का मदनांकुश के साथ महायुद्ध होने लगा। अनंगलवण के ससुर राजा वज्रजंघ एवं मदनांकुश के ससुर राजा पृथु क्रमश: उनके सारथी थे।

जिस प्रकार अनंगलवण के सामने राम के शस्त्र निरर्थक हो गये; उसी प्रकार मदनांकुश के आगे लक्ष्मण के शस्त्र भी निरर्थक हो गये। लवण और अंकुश तो यह जानते थे कि ये हमारे पिता और काका हैं। अतः वे तो उनका शरीर बचाकर बाण चलाते थे, किन्तु राम-लक्ष्मण लवणांकुश को नहीं जानते थे, वे तो उन्हें शत्रु समझकर ही बाण चला रहे थे।

लक्ष्मण ने क्रोधित होकर अपने हाथ में चक्र संभाल लिया और अंकुश पर चला दिया; परन्तु चक्र अंकुश के पास जाकर प्रभावरहित हो गया और लौटकर लक्ष्मण के पास आ गया। लक्ष्मण ने पुनः चक्र चलाया, किन्तु वह फिर वैसे ही लौट आया। अंकुश ने अपने हाथ में धनुष उठा लिया। लक्ष्मण भी सोचने लगे कि क्या – ये दोनों बलभद्र और नारायण तो नहीं हैं?

जब नारद और सिद्धार्थ के द्वारा राम-लक्ष्मण को सच्चाई का पता चला तो उन्होंने अपने हथियार जमीन पर डाल दिये। तदनन्तर स्नेह से भरे हुए दोनों पुत्रों ने हाथ जोड़कर पिता और चाचा के चरणों में झुककर नमस्कार किया। राम और लक्ष्मण ने वात्सल्य से युक्त होकर दोनों कुमारों को हृदय से लगाया। सीता अपने पुत्रों का पराक्रम और पिता के साथ उनका मिलाप देखकर बहुत प्रसन्न हुई और विमान द्वारा पुण्डरीकपुर वापस लौट गयी।

राम द्वारा सीता की अग्नि-परीक्षा – अथानन्तर किसी दिन विभीषण, सुग्रीव, हनूमान आदि प्रमुख राजाओं ने मिलकर राम से प्रार्थना की, कि – "हे नाथ ! हम पर कृपा कीजिये। हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिये। अन्य देश में रहती हुई जानकी अत्यन्त दुःखी हैं। अतः उन्हें यहाँ लाने की आज्ञा दीजिये।"

राम बोले – "यद्यपि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सीता निर्दोष और उत्तम चित्तवाली है; परन्तु मैंने ही उसे लोकापवाद के कारण घर से बाहर निकाला है, अब मैं उसे कैसे बुलाऊँ? हाँ, यदि सीता सभी के समक्ष परीक्षा देकर निष्कलंक घोषित हो, तो यह संभव है।"

तत्पश्चात् राम की आज्ञा से भामण्डल, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव आदि राजा आकाशमार्ग से क्षणभर में पुण्डरीकपुर पहुँच गये। उन्होंने सीता को प्रणाम करके कहा – हे देवी ! श्री राम ने आपके लिये यह पुष्पक विमान भेजा है और आपको बुलाया है।

जब सीता अयोध्या की राज्यसभा में आयी तो लक्ष्मण ने उन्हें नमस्कार किया। तत्पश्चात् जब सीता राम के पास आने लगी, तो रामचन्द्रजी यद्यपि उनके बिना दुःखी थे; तथापि बोले –

"सीता ! अभी तुम वहीं रुक जाओ। यद्यपि मैं तुम्हारे निर्दोष शील, पतिव्रत धर्म एवं अभिप्राय की विशुद्धता को भली-भाँति

जानता हूँ; किन्तु तुम अनेक दिनों तक दशानन के घर रही हो। इस जगत के लोग कुटिल स्वभाव वाले हैं। इन्होंने व्यर्थ ही तुम्हारा अपवाद उठाया है, अतः इनका संदेह मिट जाये और इन्हें तुम्हारे शील पर विश्वास हो जाये, कुछ ऐसा होना चाहिये। – इसके लिए तुम्हें अग्निकुंड में प्रवेश करना होगा।

सीता ने बड़ी प्रसन्नता से कहा – ''हाँ, मैं अग्निकुण्ड में प्रवेश करने के लिये तैयार हूँ।''

नारद अपने मन में सोचने लगे – ''अहो, आज तो महासती सीता ने मृत्यु को ही अंगीकार कर लिया। यद्यपि सीता महासती है; तथापि अग्नि का स्वभाव भी तो आखिर जलाना ही है ?''

लवण और अंकुश भी अपनी माता के अग्निकुंड में प्रवेश करने का निर्णय सुनकर बहुत व्याकुल हुए।

यहाँ राम की आज्ञा से ''दो पुरुष-प्रमाण गहरी और तीन सौ हाथ लम्बी-चौड़ी एक चौकोर खाई खोदी गई और उसे सूखे ईंधन, चन्दन, कृष्णागरु आदि से भरकर उसमें अग्नि प्रज्वलित की गई।''

जब यहाँ सीता की अग्नि परीक्षा की तैयारी चल रही थी, तभी अयोध्या के महेन्द्रोदय उद्यान में विद्युद्वक्त्रा नामक राक्षसी के घोर उपसर्गों पर परमशान्तभाव से विजय प्राप्त करते हुए सकलभूषण मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

अत: भगवान सकलभूषण के केवलज्ञान का महोत्सव मनाने हेतु चारों निकायों के देव वहाँ आकाश से नीचे उतर रहे थे, तभी सीता की अग्नि-परीक्षा हेतु अग्निकुंड को तैयार देखकर मेषकेतु नामक एक देव ने इन्द्र से कहा– ''हे देवेन्द्र ! महासती सीता पर बड़ा संकट आ पड़ा है। वह तो महाशीलवती तथा अत्यन्त निर्मल चित्तवाली श्राविका है, उस पर ऐसा उपद्रव तो नहीं होना चाहिये।''

इन्द्र ने कहा –‘‘हे मेषकेतु ! तुम इस महासती का उपसर्ग दूर करने के बाद भगवान सकलभूषण के दर्शन हेतु आना।

अग्निकुंड का सरोवर में रूपान्तरण – कुछ ही समय में मुनिसुव्रतनाथ भगवान का ध्यान करके और पंचपरमेष्ठी को प्रणाम करके तथा सब जीवों के प्रति क्षमाभाव धारण करके सीता ने कहा –

‘‘मन से, वचन से, काय से स्वप्न में भी मैंने श्रीराम के अतिरिक्त अन्य किसी परपुरुष की इच्छा नहीं की है, यदि मैं झूठ बोलती हूँ तो यह अग्नि ज्वाला मुझे क्षणमात्र में भस्म कर दे। हे अग्नि ! यदि मेरे पतिव्रत में अशुद्धता हो, यदि मैंने राम के अतिरिक्त पर-पुरुष को मन में भी चाहा हो तो मुझे भस्म कर देना और यदि मैं महासती, पतिव्रता, अणुव्रत-धारिणी श्राविका हूँ तो मुझे भस्म न करना।’’

– ऐसा कहकर सीता ने णमोकार मंत्र का जाप किया और अग्निकुंड में प्रवेश कर गयी। तत्क्षण ही वह अग्निकुंड सीता के पुण्योदय से एवं शील के प्रभाव से तथा बहिरंग में मेषकेतु देव के

निमित्त से स्फटिकमणि के समान निर्मलजल की वापिका में परिणत हो गया। मानो सहसा पृथ्वी को फोड़कर वेग से उठते हुए जलप्रवाह से वह कुंड लबालब भर गया। जैसे क्षोभ को प्राप्त हुआ समुद्र गर्जना करता है, ऐसा शब्द उस कुंड से उठ रहा था। क्षणभर में वह अग्निकुंड वापिका में बदल गया। उस वापिका का जल चारों ओर खड़े मनुष्यों को डुबोने लगा। पहले जल उछलकर घुटनों तक आया, फिर कमर तक आया और थोड़ी ही देर में तो जल छाती तक आ गया। सारे भूमिगोचरी और विद्याधर भी डर गये कि न जाने क्या होनेवाला है। फिर वह जलप्रवाह लोगों के कंठ तक आ गया।

घबराकर सभी पुकारने लगे – हे देवी! निर्मल चित्त की धारक! हमारी रक्षा करो। तदनन्तर वीपका से जल की तरंगें श्रीराम के चरणयुगल का स्पर्श करके शान्त हो गईं। लोग भी सुखी हुए। फिर क्षणभर में वह वापिका नाना रंगों के कमलों से भर गई। वापिका के मध्य से एक विशाल सहस्रदल कमल प्रकट हुआ। कमल के मध्य एक सिंहासन पर सीतादेवी विराजमान दिखाई देने लगीं। आकाश में स्थित देवों ने पुष्पांजलियाँ छोड़ीं।

लवण और अंकुश दोनों अत्यन्त हर्षित होकर पानी में तैरकर माता के पास पहुँच गये। दोनों पुत्र माता के दोनों ओर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगे। माता ने दोनों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

दोनों पुत्र सीता माता को जल से बाहर लाये, तब परम अनुराग से अनुरक्त चित्त राम सीता के पास आये और बोले – ''हे देवी ! मुझ पर प्रसन्न होओ। अब भविष्य में कोई ऐसी गलती नहीं करूँगा। हे महासती ! मैंने लोकापवाद के भय से अज्ञानी होकर तुम्हें बहुत दुःख दिया। मुझे क्षमा करो।''

सीता बोलीं – ''हे राजन् ! इसमें आपका या अन्य किन्हीं लोगों का कोई दोष नहीं है। ये कष्ट तो मुझे मेरे पूर्वोपार्जित कर्मोदय से हुए हैं। अतः मुझे किसी से कोई गिला-शिकवा नहीं है। आप क्यों विषाद करते हैं ? मैंने अनन्त जन्म धारणकर, चौरासी लाख योनियों में बहुत कष्ट पाया है; परन्तु अब मैं **उस समस्त दुःखों से छूटने के लिये जैनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगी।**''

यह कहकर सीता ने पल्लवसमान कोमल हाथों से अपने सिर के केश उखाड़कर राम के समक्ष डाल दिये। यह देखकर राम मूर्छित होकर गिर पड़े।

इधर जबतक राम सचेत हुए, तबतक महासंवेग को प्राप्त हुई सीता ने महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर पृथ्वीमती आर्यिका के समक्ष एक वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर और समस्त परिग्रह का त्याग करके आर्यिका के व्रत धारण कर लिये। इसी को अन्यमत में कहते हैं कि सीता पृथ्वी में समा गई।

पश्चात् रामचन्द्र भी उद्यान में स्थित सकलभूषण केवली की

गंधकुटी में पहुँच गये और भगवान को नमस्कार कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गये।

रामचन्द्र ने सकलभूषण केवली से पूछा – "हे भगवन् ! मैं किस उपाय से संसार-भ्रमण से छूटूँ ?" हे प्रभो ! मैं सारी रानियों और सारी पृथ्वी का राज्य छोड़ सकता हूँ; परन्तु भाई लक्ष्मण का स्नेह मुझसे नहीं छूटता है। हे करुणानिधान ! मैं स्नेह समुद्र की तरंगों में डूब रहा हूँ।"

सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया कि "राम ! शोक न करो, तुम बलभद्र हो। कुछ दिन नारायण-सहित इन्द्र की भाँति इस पृथ्वी पर राज्य करके, तदनन्तर मुनिव्रत धारण करके, केवलज्ञान प्राप्त करोगे।"

लक्ष्मण मरण – स्वर्ग में एकबार राम-लक्ष्मण के स्नेह की चर्चा सुनकर रत्नचूल और मृगचूल नामक दो देव उनकी परीक्षा लेने अयोध्या आ पहुँचे। सर्वप्रथम उन्होंने राम के महल में अपनी विक्रिया के द्वारा सारी रानियों को रुला दिया और लक्ष्मण के पास आकर बोले –

हे देव ! भैया राम परलोक सिधार गये हैं। जैसे ही लक्ष्मण ने ये वचन सुने कि वे 'हाय' शब्द भी पूरा न बोल सके और मरण को प्राप्त हुए। उनकी आँखों की पलकें ज्यों की त्यों रह गयीं। दोनों देव यह देखकर बहुत दुःखी हुए। वे दोनों अपने मन में पश्चात्ताप करते हुए अपने स्थान पर लौट गये।

लक्ष्मण के निश्चेष्ट होने का समाचार जब राम ने सुना तो वे लक्ष्मण के पास गये और लक्ष्मण को देखकर वे मन में सोचने लगे कि आज मेरा भाई मुझसे बिना कारण ही रूठ गया है। उन्होंने लक्ष्मण को उठाकर हृदय से लगाया और उसका मस्तक चूमने लगे। लक्ष्मण

की ऐसी दशा देखकर रामचन्द्र पसीने-पसीने हो गये, खूब रोने लगे। अनेक प्रवीण वैद्यों को बुलाया गया; लेकिन उन्होंने भी लक्ष्मण को देखकर अपना मुँह नीचा कर लिया।

इधर लक्ष्मण के वियोग से सभी लोग अत्यन्त व्याकुल हुए। रामचन्द्र तो मानो पागल ही हो गये। उन्हें किसी का विश्वास नहीं रहा। उन्होंने सारे कार्य करने बंद कर दिये। उनका मन केवल लक्ष्मण में ही रहने लगा। वे लक्ष्मण से अकेले में नाना प्रकार की बातें करते रहते।'' रात्रि में वे लक्ष्मण के कानों में कहते – ''हे भाई ! अब तो मैं अकेला हूँ। अब तो बोलो।''– इत्यादि पागलों की भाँति नानाप्रकार चेष्टाएँ करते हुए उन्हें छह मास बीतने को हुए।

इस प्रसंग को देखकर लवण-अंकुश सोचने लगे – ''**धिक्कार है इस असार संसार को ! जो नारायण विद्याधरों के द्वारा भी नहीं जीते जा सके, वे भी काल के गाल में आ गिरे। इस विनश्वर शरीर और राज्यसम्पदा से हमें क्या प्रयोजन है?**'' तदनन्तर वे दोनों भाई पिता के चरणों में प्रणाम करके महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर अमृतस्वर नामक मुनिराज से दीक्षा लेकर मुनि हो गये। अप्रतिहत (बिना गिरे) भाव से अन्तर स्वरूप में लीन रहते हुए और बाहर में वन-विहार करते हुए एक दिन वे लव-कुश मुनिवर पावागढ़ क्षेत्र में पधारे....। यहाँ पर वे अपने चैतन्य रस में इतने लीन हो गये कि क्षपकश्रेणी मांडकर इसी पावागढ़ पर्वत पर उन दोनों मुनिवरों ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया, वे कृतकृत्य परमात्मा बन गये। – ऐसे केवलज्ञान प्राप्त अरहन्त भगवन्तों को हमारा नमस्कार हो !

इस तरह शुद्ध रत्नत्रय रूप परमार्थ तीर्थ के द्वारा संसार से पार होकर उन्होंने मोक्षपद पाया। इस कारण यह स्थान भी व्यवहार से तीर्थ है। उनके साथ लाट देश के नरेन्द्र राजा आदि पाँच करोड़ मुनिराज भी यहीं से सिद्ध भगवान बनकर लोकाग्र में विराजमान हैं।

ऐसे सिद्ध भगवान को वास्तविक रूप में जानने से संसार का राग ही उड़ जाता है और सिद्ध भगवान के समान चिदानन्द स्वभाव का विश्वास हो जाता है अर्थात् सिद्धि का पंथ हाथ लग जाता है....इसी का नाम तीर्थयात्रा है, **ऐसी तीर्थयात्रा करने वाला जीव संसार से तिरे बिना नहीं रहता।**

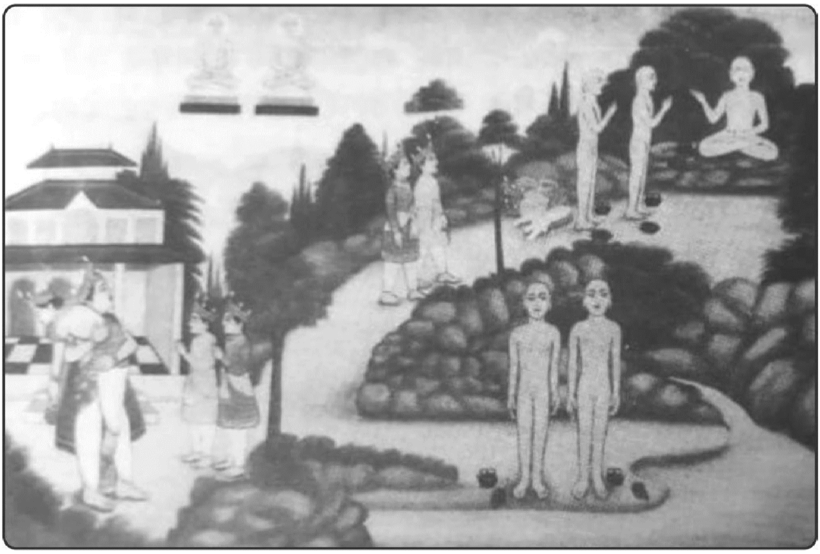

राम और शत्रुघ्न की दीक्षा – राम की ऐसी दशा के समाचार सुनकर, शम्बूक के भतीजे चारुरत्न और इन्द्रजित के पुत्र वज्रमाली ने अपनी सेना के साथ अयोध्या पर चढ़ाई कर दी।

कृतांतवक्र सेनापति और जटायु के जीव, दोनों चौथे स्वर्ग में देव हुए थे, उनके आसन कम्पायमान हुए। वे दोनों शीघ्रता से अयोध्या पहुँच गये। जटायु के जीव ने शत्रुसेना को माया से मोहित कर दिया। सब शत्रु डरकर भाग गये। इन्द्रजित् के पुत्र वज्रमाली तथा चारुरत्न ने सोचा कि अब हम विभीषण को क्या मुँह दिखायेंगे? अतः उन्होंने अनेक विद्याधरों के साथ रतिवेग मुनिराज के समक्ष जिनदीक्षा ले ली।

यह देखकर जटायु के जीव ने रतिवेग मुनिराज के दर्शन किये, प्रणाम किया और सारी बातें सच-सच बताकर उन मुनियों से क्षमायाचना की, फिर वह अयोध्या आ गया।

अयोध्या में रामचन्द्र भाई लक्ष्मण के शोक में पागलों की तरह चेष्टा कर रहे थे। दोनों देवों ने उनके सम्बोधन के लिये प्रयत्न शुरू किये। कृतांतवक्र का जीव किसी सूखे वृक्ष को सींचने लगा और जटायु का जीव मरे हुए बैलों की जोड़ी से हल चलाने की कोशिश करने लगा, फिर शिलातल पर बीज बोने लगा। कुछ देर बाद कृतांतवक्र का जीव राम के आगे जल से भरी मटकी को रखकर ऐसे मथने लगा, मानो घी निकालना चाहता हो। इसी प्रकार जटायु का जीव घानी में बालू डालकर पेलने लगा, मानो तेल निकाल रहा हो।

दोनों को ऐसे कार्य करते देखकर राम बोले – ''तुम दोनों तो बड़े मूर्ख हो। सूखा वृक्ष सींचने से क्या लाभ है? शिलातल पर बीज बोने से क्या लाभ है? जल को बिलोने से कहीं घी निकलता है?''

इस पर वे दोनों देव बोले – ''तुम अपनी कहो ! तुम जो भाई के मृतक शरीर को लिए घूम रहे हो, क्या यह सार्थक है?''

दोनों देवों के ऐसे वचन सुनकर राम मोहरहित हो गये। उन्हें जिनवाणी के सारे वचन याद आने लगे। इस प्रकार जाग्रत होकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। तब वे दोनों देव अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए।

जटायु के जीव ने राम से कहा – ''मैं जटायु नामक गिद्ध पक्षी का जीव हूँ। मैं आपके प्रसाद से चौथे स्वर्ग में देव हुआ हूँ।''

कृतांतवक्र के जीव ने भी कहा – ''हे नाथ ! मैं आपका कृतांतवक्र सेनापति था। आपने मुझे आज्ञा दी थी कि यदि मैं देव होऊँ तो विपदा के समय आपको सम्बोधूँ/सम्हालूँ।''

राम ने उन दोनों से कहा – ''तुम दोनों मेरे परममित्र हो।''

फिर लक्ष्मण के शोक से रहित होकर राम ने लक्ष्मण के शरीर का सर्‌यू नदी के किनारे दाह-संस्कार कर दिया।

तदनन्तर वैराग्यपूर्ण हृदय के धारक और आत्म-स्वभाव को जानने वाले श्री राम ने मर्यादा पालने हेतु अपने भाई शत्रुघ्न से कहा– ''हे शत्रुघ्न ! मैं मुनिपद धारण करके सिद्धपद प्राप्त करना चाहता हूँ, तुम इस पृथ्वी का राज्य सम्हालो।''

शत्रुघ्न बोले – ''हे देव, मुझे इसकी कोई अभिलाषा नहीं है। मैं तो आपके साथ ही मुनि दीक्षा अंगीकार करूँगा।''

जब श्री रामचन्द्र ने देख लिया कि शत्रुघ्न का वैराग्य के प्रति दृढ़ निश्चय है, तो उन्होंने अनंगलवण के पुत्र को राज्य सौंपकर, सुव्रतस्वामी के निकट समस्त परिग्रह का त्याग करके जिनदीक्षा अंगीकार की। समस्त परिग्रह से रहित होने पर वे ऐसे सुशोभित होने

लगे, जैसे राहु से रहित हो जाने पर सूर्य सुशोभित होता है। राम के साथ उनके भाई शत्रुघ्न और विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, विराधित इत्यादि अनेक विद्याधर राजा राग-द्वेषरूपी शत्रुओं का नाश करने के लिये समस्त परिग्रह का त्याग करके मुनि हो गये। राम के साथ साथ सोलह हजार से अधिक राजा मुनि हुए और रामचन्द्र की रानियों सहित सत्ताईस हजार आर्यिकाएँ हुईं।

श्री राम गुरु की आज्ञा लेकर समस्त विकल्पों का त्याग करके एकलविहारी हो गये। वे जिनकल्पी होकर ध्यान करने लगे और उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया।

मुनिश्रेष्ठ रामचन्द्र का पाँच दिन के उपवास के पश्चात् प्रतिनन्दी राजा के द्वारा वन में निरन्तराय खीर का आहार होने पर, देवों ने हर्षित होकर पंचाश्चर्य किये। मुनि रामचन्द्र अक्षीण महाऋद्धि के धारी थे। अतः उस दिन रसोई का अन्न अटूट हो गया।

मुनिराज रामचन्द्र को केवलज्ञान – एकदिन वे क्षपकश्रेणी पर आरोहण करने के हेतु अर्थात् समस्त कर्मों का नाश करने के लिये कोटिशिला पर ध्यान करने के लिये प्रतिमायोग से विराजमान हुए। ज्ञातव्य है इसी कोटिशिला को लक्ष्मण ने उठाया था।

इधर अच्युत स्वर्ग के स्वयंप्रभ नामक प्रतीन्द्र (सीता का जीव) ने जब अपने अवधिज्ञान से राम का और अपना परम स्नेह, अपने अनेक पूर्वभव एवं राम का मुनि होकर कोटिशिला पर ध्यान करने के लिये स्थित होना आदि बातें जानीं। तब प्रतीन्द्र उसने सोचने लगा कि देखो कर्मों की विचित्रता ! मैंने तो व्रत के प्रभाव से स्वर्गलोक की प्राप्ति की और ये रामचन्द्र तो मुनि हो गये हैं और अब शुक्लध्यान द्वारा कर्मशत्रु को जीतना चाहते हैं।

यदि मेरी देवमाया से इनका मन कुछ मोह में आ जाये और ये शुद्धोपयोग से च्युत होकर शुभोपयोग में आ जाएँ तो ये भी आयु पूर्ण होने पर यहाँ अच्युत स्वर्ग में आ जाएँगे। हम दोनों में बहुत प्रेम है। इनके यहाँ आने पर हम दोनों मेरु और नन्दीश्वर द्वीप की यात्रा करेंगे और शेष काल साथ में रहेंगे।

अपनी देवमाया से प्रतीन्द्र जानकी का रूप धारण करके राम के पास जाकर कहने लगा – ''हे नाथ ! दुनिया भर में भटकते-भटकते किसी पुण्योदय से अब आपको देखा है, आप मुझे संभालिये। हे देव ! मैंने आपकी आज्ञा लिये बिना और पूर्वापर विचार बिना ही जिनदीक्षा ले ली थी; अब मेरा मन केवल आपमें ही है। मुनिदीक्षा तो अत्यन्त वृद्ध लोगों को लेना ही योग्य है।

देखो, **यह जीव राग के आधीन होकर, राम को ध्यान से च्युत करने का विचार करने लगा। धिक्कार है इस राग को !**

इसप्रकार नाना प्रकार के मायाजाल द्वारा सीता के जीव ने मुनिवर रामचन्द्र के मन को डिगाने का उद्यम किया, परन्तु उनका मन नहीं डिगा और माघ शुक्ला द्वादशी की पिछली रात्रि में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

इन्द्रादि देवों ने केवलज्ञान की पूजा की और गंधकुटी का निर्माण किया। सीता के जीव प्रतीन्द्र ने भी केवली भगवान की पूजा की और तीन प्रदक्षिणाएँ देकर उनसे बारम्बार क्षमायाचना की – हे देव ! मुझ दुर्बुद्धि ने जो दोष किये हैं, उन्हें क्षमा कीजिये।

भगवान का दिव्य उपदेश हुआ – ''जैसे अंगुली से चन्द्रमा की ओर संकेत किया जाता है, तो अंगुली को नहीं पकड़ना है, अपितु अंगुली जिसे दिखा रही है, उसको देखना है। **वैसे ही भगवान की मूर्ति आत्मस्वभाव को दिखलाती है। मूर्ति के माध्यम से अपने**

आत्मस्वभाव को देखना है। इसलिए आत्मदर्शन के लिये जिनदर्शन जरूरी है।''

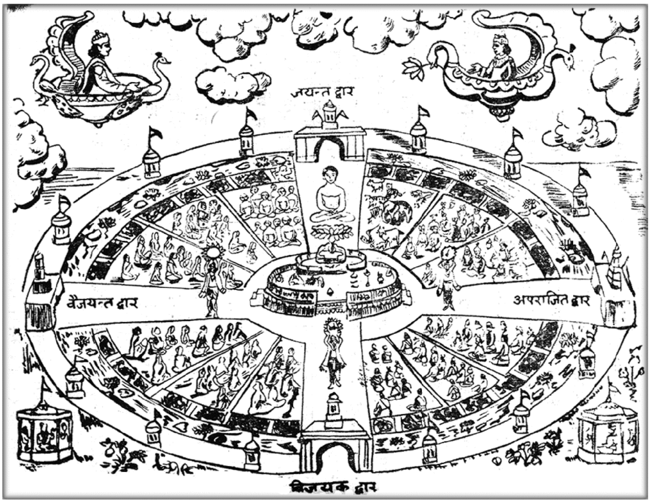

पश्चात् सीता के जीव प्रतीन्द्र को लक्ष्मण और रावण के बारे में पूछने पर पता चला कि वे दोनों अभी नरक में हैं।

तत्पश्चात् प्रतीन्द्र ने नरक में जाकर अपना परिचय देते हुए उन्हें संबोधित किया – ''अरे भव्यात्माओ ! मुझसे मत डरो। **बल्कि जिन तीव्र पापों के कारण तुम सब नरक में आये हो, उन पापों से डरो।** ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मण, रावण, शंबूक के जीव उस समय शान्त हो गये। ज्ञातव्य है **शंबूक का जीव असुरकुमार देव हुआ था, कैसी विचित्रता है कि शंबूक का जीव तो उन्हें भड़काने हेतु वहाँ गया था और सीता का जीव उन्हें वहाँ से निकालने हेतु गया था।** परन्तु निकाल नहीं पाया, उनका शरीर पारे की भाँति बिखर जाता था। अत: 'पूर्वोपार्जित कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है' – ऐसा विचार कर प्रतीन्द्र वहाँ से अपने देवलोक वापस आ गया।

श्रीराम केवली विहार करते हुए, अपने कैवल्यकाल के सात सौ वर्षों में दिव्य-देशना द्वारा भव्यजीवों के लिए कल्याण का मार्ग प्रकाशित करते रहे।

फिर आयु के अन्त में तुंगीगिरि पर्वत पर आकर योग-निरोध करके चौदहवें गुणस्थान – अयोगी-जिन अवस्था में पहुँचे।

यहाँ शुक्लध्यान के चौथे चरण द्वारा वे अयोगी-जिन, चारों अघातिकर्मों का नाश करके तथा तीन शरीरों – औदारिक, तैजस और कार्माण से सम्बन्ध विच्छेद करके सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो गये।

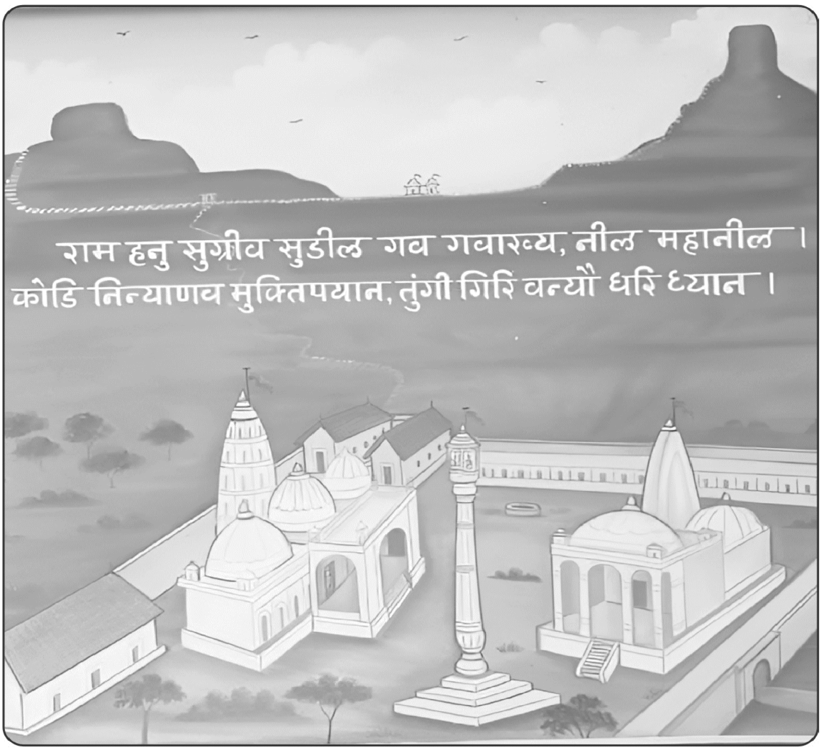

बोलिए, सिद्धालय में विराजमान सिद्ध भगवान श्री राम प्रभु की जय हो।

इसप्रकार यह "संक्षिप्त रामकथा" अतिसंक्षेप में पूर्ण होती है।

➤ हमारे प्रकाशन ➤

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा... ।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**-इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।